THE

SIDHANT SHIROMANY

WITH VISANU BHASHAYA

BY

PANDIT, BHASKARA CHARYA

TRANSLATED INTO HINDI



BY

PANDIT UDAI NARAIN SINGH S. RESIDENT OF

V. MADHURAPUR DIST. MOZAFFERPUR



AND

Printed and Published by

KHEMRAJ SHRIKRISHNADAS,

SHREE VENKATESHWAR STEAM PRESS

BOMBAY.

1927

The humble translator dedicates his worth-
less attempt to the benefactor
of the sanskrit knowing
population of India.

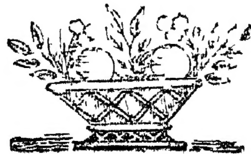
Khemraj Shrikrishnadas,

PROPRIETOR OF THE

"Shri Venkateshwar Steam Preess, BOMBAY".

P. UDAI NARAYAN SINGH S.

THE AUTHOR.



॥ श्रीः ॥

श्रीभास्कराचार्यविरचित-

सिद्धान्तशिरोमणेः

गोलाध्यायः ।

मुजफ्फरपुरान्तर्गत-मधुरापुरनिवासिपंडित-

उदयनारायणसिंहशर्म्मकृत-

भाषाटीकासमेतः ।

खेमराज श्रीकृष्णदास,

अध्यक्ष-"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस, बम्बई.



मुद्रक और प्रकाशक-

खेमराज-श्रीकृष्णदास,

मालिक-"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस, बम्बई.





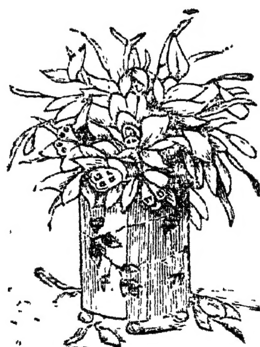
बहुत दिनोंसे मेरा विचार था कि, मै ज्योतिषशास्त्रके ऊपर कुछ लिखूं परन्तु अनेक कारणोसे यह कार्य्य अबतक अधूरा रहा आज इसी कार्य्यको आरम्भ करनेका मुझे अवसर मिला है । यद्यपि ज्योतिषशास्त्रके ऊपर कुछ लेख लिखना साधारण बात नहीं है पर मुझे सन् १८९६ ई. से सूर्य्यसिद्धान्तके अनुवाद करनेके कारण प्रायः ज्योतिषशास्त्रके प्राचीन एवं नवीन ग्रन्थ देखने पडे और अनेक सुयोग्य विज्ञ ज्योतिर्विद् पण्डितोसे मिलकर गूढ़ २ विषयोंको भली भाँति हल करना पड़ा ।.

वेदके छः अङ्गोंमेंसे एक अङ्ग ज्योतिषशास्त्र भी है । विना अङ्गके ज्ञानके अङ्गीका ज्ञान नहीं होसकता है अर्थात् विना ज्योतिषशास्त्रको पढ़े वेद वा वैदिक प्रक्रियानुसार यज्ञादि कार्य्य करने करानेकी योग्यता ज्योतिष सम्बन्धी नहीं होसकती, छः अङ्गोंमें व्याकरण मुखस्वरूप है और ज्योतिष नेत्ररूपी है विना नेत्रके अकिञ्चित्कर रहना पड़ता है अतः ज्योतिषशास्त्रका पढ़ना पढ़ाना द्विजमात्रका परम कर्त्तव्य है, ज्योतिषशास्त्रके तीन भेद माने जाते हैः—सिद्धान्त संहिता और होरा या जातक । इनमेंसे मुख्य ज्योतिष-शास्त्र सिद्धान्त ग्रन्थ है जिसके विना संहिता और होराशास्त्र भी समझमें नहीं आसक्ते । यद्यपि सिद्धान्त ज्योतिषके २१ प्रामाणिक ग्रन्थ है पर श्री पंडित वर **भास्कराचार्य्य**जीका " **सिद्धान्तशिरोमणि** " सर्वो-परि माना जाता है, एवं इसीको प्रायः लोग पढ़ते पढ़ाते हैं । इस ग्रन्थकी संस्कृतमें स्वयं ग्रन्थकारने मिताक्षरा नामक व्याख्या की है परन्तु इन दिनो संस्कृतविद्याके अवनति होनेसे इसके आशयको सर्व साधारण नहीं समझते, इस कारण मैंने प्रथम इसके " **गोलाध्याय** " का भाषानुवाद कर

पाठकोंकी सेवामें अर्पण किया है और इस ग्रन्थका पूरा २ व्योरा इसी भूमिकामें लिख दिया है । पढने पढानेवालोंको चाहिये कि ग्रन्थ आरम्भ करनेके पूर्व "**गोलाध्यायकी विवृत्ति**" को सम्यक् पढकर तब ग्रन्थको पढ़ें तो ग्रन्थका आशय अच्छी प्रकार ज्ञात होजावेगा । मैंने यथाशक्ति इसके अनुवाद करनेमें परिश्रम किया है, यदि कहीं भ्रान्त्या अन्यथा लिख गया हो तो उसको पाठक सुधारकर पढ़ें पढ़ावेंगे और कृपया मुझे उस भूलको सूचित करेंगे जिससे भविष्यत्‌में दूसरी आवृत्तिमें उसको देख भालकर सुधार दूंगा ।

ता. २-८--२
स्थान-मधुरापुर
डाक-विधृपुर
जि. मुज़फ्फरपुर.

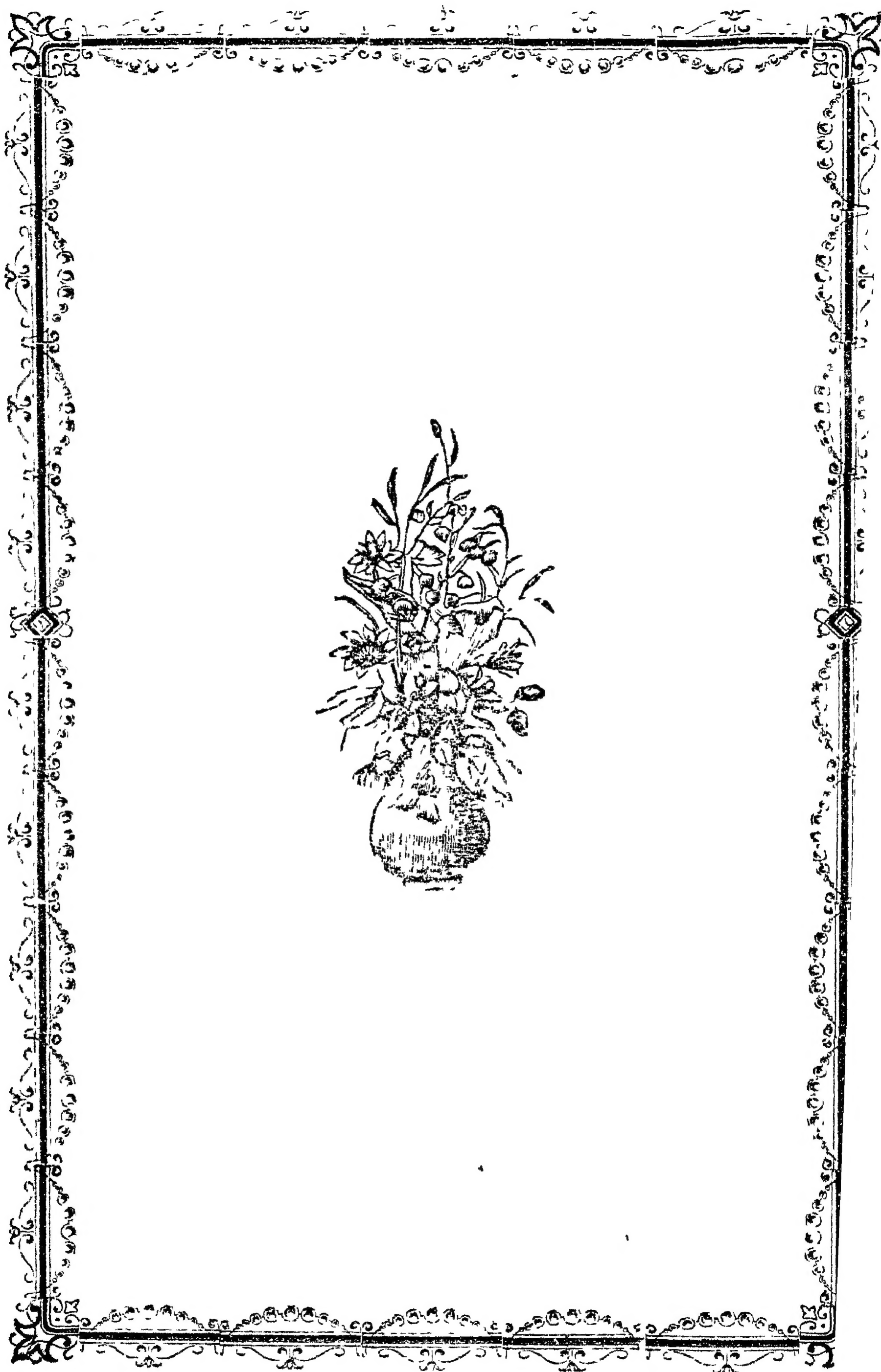
भवदीय कृपाकांक्षी-
अनुवादक-
पं० उदयनारायणसिंह शा०



सिद्धान्तशिरोमणेः—गोलाध्यायस्य अनुक्रमणिका।



इत्यनुक्रमणिका समाप्ता।



॥ श्रीः ॥

गोलाध्यायकी विवृत्ति ।



ईसवी सन् १२०० के आरम्भमें सह्यकूल नामक पर्वतके निकट महेश्वर नामक पण्डित रहते थे; वह वेद एवं वेदानुयायी स्मृति शास्त्र एवं नानाप्रकारकी विद्याओंमें पारदर्शी थे। इन शाण्डिल्यगोत्रोत्पन्न महेश्वरको शाके १०-३७ में एक पुत्र उत्पन्न हुआ। यही पुत्र भारतके गौरव भास्कराचार्य्य हुए। भास्कराचार्य्यकी बुद्धिमत्ता असामान्य थी, उनका गणितशास्त्रमें अधिक प्रवेश था। एवं उनकी निर्मल परिमार्जित बुद्धिकी प्रशंसा इदानीन्तन पाश्चात्यगणितवेत्ता लोग करते है। ३६ वर्षकी आयुमें उनके गणितशास्त्रके अध्ययनका फल जगन्मान्य "सिद्धान्त शिरोमणि" ग्रन्थ रचित हुआ। आर्य्यभट्ट, ब्रह्मगुप्त प्रभृतिके ग्रन्थोका अनुशीलन करके उनका गणित भण्डार समृद्ध हुआ था इस प्रकार उनके ग्रन्थसे बोध होता है।

बडे बुद्धिमान् लल्लने जो अपने धीवृद्धि नामक ग्रंथमे भ्रान्त विधि निबद्ध किया था, उसको भास्कराचार्य्यने विस्तृत समालोचना करके दोष दिखलाते हुए अपने सिद्धान्तका प्रचार किया।

भास्कराचार्य्यको गणितकी शक्तिकी अपेक्षा काव्यमें न्यूनशक्ति नहीं थी। उनको यह धारणा थी जो केवल बुद्धि ही गणितरूपी समुद्रका पार करनेके लिये सेतु है। इस विश्वासका फल तत्कृत सिद्धान्तशिरोमणि ग्रंथ है।

भास्कराचार्य्यने पृथिवीकी आकर्षणशक्तिका ज्ञान निपुढन साहबके बहुत पूर्व प्राप्त किया था—यह बात उनके भुवनकोष पाठ करनेसे जान पड़ती है।

गणिताध्यापक युलहू साहब ईसवी सन् १७०० में बहुत परिश्रमसे जिस गणितके फलको पाया—उसको भास्कराचार्य्यने अपने सिद्धान्तशिरोमणिमें ५०० वर्ष पूर्वहीसे लिख रक्खा था, लार्ड ब्राउङ्करने जो ईसवी सन् १६५९ में एक गणितफल लाभकर अपनी पण्डिताईका परिचय दिया है—उसको भी भास्कराचार्य्यने सिद्धान्तशिरोमणिमें लिखा है। कुट्टक गणनाकी प्रथा युरोपमें १६२४ ई० में प्रचारित हुई प्रश्नाध्यायमें यह विषय भी लिखा है। अङ्कविद्यामें भास्कराचार्य्यकी तीक्ष्ण बुद्धिमत्ताकी प्रशंसा कोई विना कहे

रह नहीं सकता । उन्नीसवीं शताब्दीके शेष भागमें—गणितविद्याने इतनी उन्नति की जो उसके साथ द्वादश शताब्दीकी अङ्कविद्याकी तुलना करनेपर नितान्त सामान्य बोध होगा । इसमें सन्देह नहीं किन्तु भारतवर्षमें ईसवी सन् १२०० में भास्कराचार्य्य आदि पण्डितलोग पृथिवीके अन्यान्य सब प्रदेशके गणितज्ञोंकी अपेक्षा कितने उन्नत थे—इसका विचार करनेपर निश्चय होता है कि भास्कराचार्य्यके समय पर्य्यन्त उनके बराबर गणितज्ञ सारी पृथिवीमें कोई उत्पन्न नहीं हुआ था यह कहना अत्युक्ति नहीं है ।

सिद्धान्तशिरोमणि ४ भागोंमें बँटा है:—१ गोलाध्याय, २ गणिताध्याय, ३ बीजगणिताध्याय, ४ पाटीगणिताध्याय. पाटीगणिताध्यायसे सबलोग " लीलावती " जानते हैं । बीजगणिताध्याय सिद्धान्तशिरोमणिका द्वितीयाध्याय है । साधारण गणित दो प्रकारका है, एक व्यक्त और दूसरा अव्यक्त गणित है । लीलावती व्यक्त गणित और बीजगणित अव्यक्त गणित है इन दो प्रकारके गणितमें अधिकार प्राप्त करनेपर गणिताध्याय पढ़नेका अधिकार होगा ।

गणिताध्यायमें जो सब क्रिया समालोच्य और सन्देहात्मक हैं उन्हींको सरल करनेके लिये एवं गोलतत्त्व विशेषरूपसे समझनेक लिये गोलाध्याय लिखा गया है ।

गोलाध्याय ।

गोलाध्यायमें १३ अध्याय हैं । १ गोलप्रशंसा । २ गोलस्वरूपप्रश्न, ३ भुवनकोष । ४ मध्यगतिवासना । ५ स्फुटगतिवासना । ६ गोलबन्ध । ७ त्रिप्रश्नवासना । ८ ग्रहणवासना । ९ दृक्कर्मवासना । १० शृङ्गोन्नतिवासना । ११ यन्त्रवासना । १२ ऋतुवर्णन । १३ प्रश्नाध्याय. इनके अतिरिक्त ज्याकी उत्पत्तिनामक अध्याय परिशिष्टरूपसे मिलाया हुआ है । इस ग्रंथका भाष्य भी ग्रंथकर्त्ताहीका है, उसमें अनेक प्रकारकी बातें लिखी हैं ।

गोलप्रशंसाध्यायमें ९ श्लोक हैं । प्रथम श्लोकमें मङ्गलाचरण । द्वितीय श्लोकमें ग्रन्थप्रयोजन, तृतीय और चतुर्थ श्लोकमें ज्योतिर्विदोंको गोल विद्या जाननेकी आवश्यकता, पञ्चम श्लोकमें गोलयन्त्रका अर्थ, छठे श्लोकमे ज्योतिषशास्त्रका उद्देश्य एवं गोलतत्त्व और गणितज्ञानका प्रयोजन । सप्तमश्लोकमें शास्त्र पढ़नेका अधिकारी निरूपण । अष्टम श्लोकमें व्याकरण शास्त्रके पढ़नेकी आवश्यकता एवं नवमश्लोकमें ग्रन्थ पढ़नेका उद्देश और लाभ वर्णित है ।

इस अध्यायमें कोई विशेष बात नहीं कही गयी है । केवल मङ्गलाचरण और प्रयोजनता आदि हैं। गोलस्वरूप प्रश्न द्वितीय अध्यायमें १० श्लोक हैं। इसमें केवल प्रश्नकाण्डमें ग्रन्थ समालोच्य विषय आदि वर्णित हुए हैं ॥

प्रथम प्रश्नका उत्तर भुवनकोष २। ४। ५। ६ और ९ श्लोकमें देखना. भास्कराचार्य्यके मतानुसार पृथिवी आधारशून्य अपनीही शक्तिपर शून्यमें अवस्थित है। इसमें उनकी पहिली युक्ति यह है। कि किसी वस्तुके एक आधार माननेसे—आधारके आधारका प्रयोजन पड़ता है। इस प्रकार क्रमशः एककेपरे दूसरे आधारकी कल्पना करते २ शेषाधारको आधार रहित मानना पड़ेगा। इस प्रकार कल्पना न करके पृथिवीहीको आधाररहित माननेमें दोष क्या? जिस कारण कोई आधार प्रत्यक्ष नहीं होता।

एतद्भिन्न पृथिवी आठ वस्तुओंमेंसे एक वस्तु है । द्वितीयतः प्रत्येक वस्तुको एक २ विशेष स्वभाव होता है, जैसे अग्निकी उत्तापता, चन्द्रमाका माधुर्य्य प्रभृति स्वाभाविक गुणद्वारा वस्तु सब परिचित होते हैं। उसी प्रकार पृथिवी अचला है। तृतीयतः पृथिवीका पतनसिद्ध होनेसे, पृथिवी कहांको जाती है? पृथिवीके आकर्षण शक्तिके प्रभावसे अन्यान्यद्रव्य पृथिवीपर गिरते हैं। आकर्षण शक्तिकी क्रिया साधारणतः पतन कहकर प्रसिद्ध है। शून्यमें किस गुरु वस्तुद्वारा पृथिवी आकृष्ट होगी? चतुर्थतः जब पालक और प्रस्तरका खण्ड एक साथ ऊपरसे गिरता है तो प्रस्तरका फलक पहिले भूमिमें संलग्न होते दीख पड़ता है। अतएव अतिगुरु पृथिवी और लघु द्रव्य आकर्षणवशतः नीचे चलनेसे व्यवधान क्रमसे वृद्धिको प्राप्त होगी। अर्थात् किसी द्रव्यका पृथिवीमें न गिरकर क्रमशः ऊर्ध्वगामी होना आवश्यक है।

अतएव पृथिवी आकर्षणवशतः नीचे नहीं गिरती। पाश्चात्य पण्डितोंके साथ भास्कराचार्य्यकी युक्तिकी विभिन्नता होती है। जिस कारण १२०० ईसवीमें पृथिवीकी चलन शक्तिको कोई अनुमोदन नहीं कर सका। जिन सब वस्तुओंका स्वभाव कहागया है उन वस्तुओंनेभी वर्त्तमान समयमें "नवभाव" धारण किया है। भास्कराचार्य्यकी दृढ़ धारणा थी जो पृथिवी अचला ग्रहण जिस प्रकार पृथिवीके चारों ओर किसी निर्दिष्ट स्थानको केन्द्र मानकर वृत्तके ऊपर भ्रमण करते हैं उसी तरह पृथिवी अन्य किसी ज्योतिष्कके चारों ओर भ्रमण नहीं करती, भचक्र, ग्रह, नक्षत्र प्रभृति प्रवह वायुद्वारा १ नाक्षत्रिक दिवसमें भ्रमण करतेहैं। पृथिवीका अपने अक्षपर परिवर्त्तन और अपनी

कक्षामें परिभ्रमण ये दो प्रकारके गति नहीं यही दृढ विश्वास था । प्रवह वायुका कार्य्य इस समय पृथिवीका अक्ष परिवर्त्तन वा दैनिक गतिसे होता है । सूर्य्यादि सवही ग्रह पृथिवीकी चारों ओर भ्राम्यमान यह विश्वास इस समय नष्ट होकर सूर्य्यके चारों ओर पृथिवी भ्रमणशीला एवं चन्द्रमा पृथिवीके चारों ओर भ्रमण करता है । इस प्रकारकी धारणा आधुनिक ज्योतिर्विद् गणोंके हृदयमें प्रवेश की है । जिन आर्य्य लोगोंने बुद्धिका अनन्तत्वलाभ किया है और जिनने मनुष्यबुद्धिके अगम्य ज्योतिष्क विज्ञानकी सूक्ष्मगणनकी प्रथा अतिप्राचीन समयमें आविष्कार की है--वे लोग ऐसा मानेंगे कि सूर्य्य केन्द्रवृत्तमें भ्रमणशील पृथिवीको अचला निरूपण करना--यह बडाही आश्चर्य है । पृथिवीका दैनिक स्वीय अक्षपर परिवर्त्तन सत्यको लोप करके अज्ञानवशसे प्रवह वायुकी गत्यातिशय निर्णय किया है ।

यह विश्वास योग्य नहीं । कारण यह है कि प्रथम गणित ज्योतिषकी गणना प्रणाली जिनने पर्य्यवेक्षण की है--वे लोग जानते हैं जो बुध और शुक्रका शीघ्रत्व सूर्य्यके मध्यत्वसे किंचिन्मात्र भिन्न नही है अर्थात् एकही है ॥

मङ्गल बृहस्पति शनिका शीघ्र रवि मध्यसे भिन्न नहीं है । द्वितीयत: फलित ग्रन्थकारोंका क्षेत्राधिपतित्व निर्णयभी कुछ २ ज्ञानका परिचायक है. रवि और चन्द्रमाके क्षेत्रके बादही दो क्षेत्र बुधका उसके बाद दो क्षेत्र मङ्गलका उसके अनंतर दो क्षेत्र बृहस्पतिका और सर्व शेषमें दो क्षेत्र शनि कहे हैं। आधुनिक मतके साथ यह किस प्रकार आश्चर्य्य भावसे मिलता है और भी पृथिवीसे मङ्गल अर्थात् पृथिवीके अनन्तर मङ्गल इस मङ्गल शब्दका प्रतिशब्द महिज कुज भूमिपुत्र इत्यादिसे विशेष जान पडता है. ग्यालिलियो कोपार्निकस प्रभृतिने बहुत कालमें इन बातोंको जान पाया है ग्रन्थ सबने जिस उपायसे उत्पत्ति लाभ किया है उस ज्ञानसे परिपूर्ण ऋषिकी बुद्धि कभी अमार्जित नहीं थी. आर्य ग्रन्थकारगणने ग्रहस्थान निरूपण करनेके लिये जो उपाय लिखगये है--उसमें मध्य और शीघ्र कहनेसे क्या जाना जावे. ग्रहगणोंके हेलिडसेंट्रिक मोन लंजिटीउड स्पष्टानयन कालमें प्रयोजन होता है । सूर्य्यही जो ग्रहगणोंके केन्द्रमें अवस्थित है । यदि इसको वे नहीं जानते तो क्यों सूर्य्यको ग्रहगण कितने दिनोंमें प्रदक्षिण करते हैं । इस विषयद्वारा स्पष्टानयनकी व्यवस्था की है । सूर्य्य और पृथिवीका कक्षाभ्यन्तरमें जो सब ग्रह हैं, वे अवश्यही पृथिवीकी अपेक्षा न्यून संख्यक दिनोंमें सूर्यको प्रदक्षिण करते है ।

अतएव इनकी गति पृथिवीकी गतिकी अपेक्षा सूर्य्यस्थ प्रष्टाके निकट अधिक है ।

इसलिये बुध और शुक्रका सूर्य्य परिभ्रमण काल अङ्कको शीघ्र नाम रक्खा है । मङ्गल बृहस्पति और शनि इनके सूर्य्य परिभ्रमण काल पृथिवी परिभ्रमण कालकी अपेक्षा सूर्य्यस्थित द्रष्टाके निकट अल्प है इसलिये पृथिवीके भ्रमणके साथ तुलनामें पृथिवी भ्रमणही ग्रहोंका शीघ्र है। चन्द्रमा पृथिवीकी चारों ओर परिभ्रमण करता है । इसकारण चन्द्रमाकी गतिके साथ पृथिवीकी गति तुलना उनने नहीं की है, इलङ्गेशन निर्णय करके अङ्गरेजी मतसे हेलिड सेट्रिकसे जिअसेट्रिक आनयन प्रथाही शीघ्र और मध्य लेनेकी प्रक्रिया है ।

भास्कराचार्य्यकी ४ थी युक्ति इससमय विचाराधीन (Under Consideration) है—भास्कराचार्य्यकी धारणा थी जो गुरुवस्तु और लघुवस्तु एककालमें आश्रयच्युत होनेसे गुरु वस्तु पहिले गिरती है लघुवस्तु उसकी अपेक्षा देरमें गिरती है । निर्वात प्रदेशमें (जहां वायु न हो) गुरु और लघु वस्तु एक साथ गिरती है । यह भी इस समय पण्डिताग्रगण्य निउठनकी गिनि और पालकके प्रमाण द्वारा प्रतिपन्न होता है ।

पाश्चात्य युक्ति अनुसार केन्द्राभिकर्षिणी और केन्द्रापसारिणी शक्तिद्वयके द्वारा चलित होकर सूर्य्यकी चारों ओर वृत्ताभास प्रथम नियत परिभ्रमण करते हैं । सौरमण्डल और अन्यान्य नक्षत्र सब शून्यमें किसी अनिर्दिष्ट रास्तेमें जाते हैं । शून्यमें ऊंची और नीची संज्ञा होही नहीं सकती है, अतएव पतन या ऊर्ध्वगमनका शब्दप्रयोग असम्भव किसी द्रव्यकी प्रथम अवस्था वा सरल पथमें समगतित्व । दूसरी शक्तिद्वारा प्रतिहत न होनेसे परिवर्त्तन नही होता ॥ १ ॥ अवस्था परिवर्तन अपरशक्तिके अनुपातके अनुसार और अभिमुखमें संघटित होती है ॥ २ ॥ प्रति दो पदार्थोंका सम्बन्ध घात प्रतिघातात्मक होता है ॥ ३ ॥

येही तीन गति जगत्का स्वभाव है जगत्में प्रतिपदार्थ अपर पदार्थको अपने २ परिमाणानुसार और परस्परके दूरत्व वर्गके विपर्यय अनुसार आकर्षण करता है । उपरोक्त गतिविधिकी धारणा ही पाश्चात्य ज्योतिर्विद्गणोंकी भित्ति है ।

द्वितीय प्रश्नका उत्तर—भुवनकोषके ३, ११, १२, १३, १६, १९, २० श्लोकोंमें पृथिवीका आकार वर्णित है । १४, १५ दो श्लोकोंमें पृथिवीका परिमाण कहा है १७ । १८, २१, से ३८ । ४१ से ४३ श्लोकमें भूगोल कहा है ।

भास्कराचार्य्यने पृथिवीका आकार कदम्बकी नाईं गोल सिद्धान्त किया है । कदम्बके उपरिभागमें केशरकी नाईं पर्वत ग्रामादि अवस्थित हैं । कारण यह है कि, पृथिवीके समतल होनेसे उसके ऊपर सूर्य्य अतिदूरमें भ्रमण करनेपरभी देवतागण जिस कारणसे सर्व क्षण सूर्यका दर्शन करते हैं उसी कारणसे सूर्य्य क्यों मनुष्योंको भी सर्व पदार्थ नहीं दीखेगा ? ॥ २ ॥ कांचन पर्वतके दूसरी ओर सूर्यका जानाही यदि रात्रि होनेका कारण है तो सूर्य और मनुष्योंके बीच मेरु दीख पडेगा। प्रतिरोधकारी मेरु जब नहीं देख पड़ता है तो समतल होना पृथिवीका सर्वथा खण्डित होता है। भास्कराचार्य्यने लिखा है कि पौराणिक मतसे जम्बूद्वीप गोलाकार व्यास लक्ष योजन जम्बूद्वीपके मध्यस्थलमें मेरु है। जम्बूद्वीपके परमें क्षारसमुद्र उसके परमें अन्यद्वीप पुनः समुद्र इत्यादि। इस प्रकार सप्तम द्वीपके मध्यमें मानस पर्वत है, मानस पर्वतका अवस्थानवालाकी नाईं इस पर्वतके ऊपर रथ चक्रका लक्ष योजन व्यवधानमें भ्रमण करता है। इसी भ्रमणके कारण उत्तरायण और दक्षिणायन संघटित होता है। ऐसी धारणा नितान्त असमञ्जस है इस युक्ति अनुसार सूर्य्योदय उत्तर होना चाहिये जिस कारण मेरु उत्तरमें है ।

३ मेरु उत्तरगोलमें अवस्थित होनेसे दक्षिण गोलमें सूर्य्यका भ्रमण किस प्रकार सम्भव होगा। साधारण यह है जो पृथिवीको जब समतल देखते हैं तो किस प्रकार उसका गोलत्व सम्भव हो सकता है? उसके उत्तरमें भास्कराचार्य्यने युक्ति दी है कि–जिस प्रकार बडे वृत्तिका छोटा अंश समरेखाकी नाईं उपलब्ध होता है उसी प्रकार पृथिवीका बहिर्वृत्त- नितान्त वृहत् है इस कारण ऐसा जान पडता है ।

भास्कराचार्य्यकी प्रधानयुक्ति यह है कि पृथिवीको गोल न माननेसे शृङ्गोन्नति ग्रहयुति ग्रहण, उदयास्त एवं छाया आदिसे सबही घटनाओंके साथ असादृश्य हो पडेगा।

अन्य किसी प्रकारके आकार माननेसे इनके द्वारा भ्रम पाया जाता है। गोलाकार पृथिवीके जो जिस स्थानमें रहता है, पृथिवीको अपने पैरके नीचे एवं पृथिवीके ऊपर अपनेको अवस्थित मानता है ।

पृथिवीके चतुर्थांश दूरपर अवस्थित व्यक्तिगण परस्पर समकोण अवस्थित हैं। अर्धांश दूरमें अवस्थितगण जलमें प्रतिबिम्बित व्यक्तिकी नाईं परस्पर विपरीत दिशामें दण्डायमान होते हैं ।

भास्कराचार्य्यने पृथिवीकी परिधि ४९६७ योजन निर्णय किया है भूव्यास १५८१$\frac{2}{24}$ भूपरिधि जाननेके लिये दो उत्तर दक्षिणपुरीका अंशान्तरांश अन्तर योजन जानकर सम्पूर्ण चक्र ३६० अंशमें भूपरिमाण योजनका निर्णय किया है, निरक्षसे अवंति २२$\frac{1}{2}$ अक्षांशमें अवस्थित है। इसके अन्तर योजनका १६ से गुणन करनेसे पृथिवीकी परिधि ज्ञात होती है।

भास्कराचार्य्यने भूगोलवर्णनमें अपनी कोई सम्मति नहीं प्रकाशित की है। किन्तु पुराणानुसार लिख दिया है पृथिवीपर लवणादि सात समुद्र हैं।

दो दो समुद्रोंके बीच एक २ जम्बूद्वीप प्रभृति द्वीप है जम्बूद्वीपमें निरक्ष प्रदेशमें पृथिवीके चतुर्थांश दूरमें लङ्का यमकाटी सिद्धपुर और रोमकपत्तन ये चार स्थान हैं। लंकाके उत्तरमें हिमगिरि, उसके उत्तरमें हेमकूट, उसके उत्तरमें नैषधपर्वत है। नैषध और हेमकूट मध्यप्रदेश हरीवर्ष है। हेमकूट और हिमालयके बीचमें किन्नरवर्ष और हिमालय और लङ्काके मध्यमें भारतवर्ष है। पृथिवीके अपरार्द्धमें जम्बूद्वीपमें सिद्धपुरी उसके उत्तरमें शृङ्गवेर उसके उत्तरमें शुक्र उसके उत्तरमें नील है। नील और शुक्रके बीचमें रम्यकवर्ष है, शुक्र और शृङ्गवेरके बीचमें हिरण्यवर्ष है। शृङ्गवेर और सिद्धपुरके मध्यमें कुरुवर्ष है। लंकाके पूर्वमें यमकोटी है। उसके उत्तरमें मालवपर्वत है। मालवके उत्तरमें निषध और नीलपर्वत है। यमकोटी और मालवके भीतर भद्राश्ववर्ष है। मालव एवं निषध और नीलपर्वतके मध्यमें इलावृत्तवर्ष है। रोमकपर्वतके उत्तरमें गन्धमादन और उसके उत्तरमें नील और निषधपर्वत हैं। गन्धमादन और रोमक पत्तनके मध्य केतुमालवर्ष है। एवं गन्धमादनके उत्तरमें इलावृत्तवर्ष है। इलावृत्तवर्ष देवताओंका आवासस्थान है। इलावृत्त वर्षके मध्य मेरुगिरि स्थित है। मेरुके ३ शिखर है। ब्रह्मा विष्णु और महादेव वहां वास करते हैं। उसके नीचे इन्द्रादि ८ देवता ८ पुरियोंमें रहते हैं।

भास्कराचार्य्यके तृतीय प्रश्नमें स्पष्ट संस्कारकी आवश्यकता दिखलाना उद्देश्य है।

अनुपात ग्रह क्यों स्पष्ट दृश्य नहीं होता? इसका कारण पूछा है। उसका उत्तर इतनाही कहना चाहिये कि ग्रह कक्षाका मध्य भूमध्यकी विभिन्नताके कारण स्पष्ट संस्कारकी आवश्यकता होती है। भास्कराचार्य्यने दो प्रकारके

अंकनद्वारा समझानेकी चेष्टा की है । प्रथम उनने इस प्रकार दो भिन्न केन्द्रगत समवृत्त रचना करनेको लिखा है जिसके केन्द्रकी भिन्नता अन्त्य-फलकी ज्याकी नाईं हो एकको भूकेन्द्र और दूसरेको ग्रहकक्षा केन्द्र कहा जासकता है । ग्रहकक्षाके जिस स्थानसे पृथिवीसे दूरमें केन्द्रद्वय मिलकर रेखा भेद की है उसको उच्च स्थान कहते हैं। इसी स्थानमें ग्रह रहनेसे पृथिवीसे बहुत दूर अवस्थित होता है । ग्रहगण अपनी २ कक्षामें समगतिसे भ्रमण करते हैं ।

ग्रहस्थान और भूमध्यगत रेखा भूवृत्तस्थानमें दीख पड़ती है । उसी वृत्तमें राशिचक्र स्थापित है । ऐसा समझकर इस संस्कारका प्रयोजन होता है। दूसरे वृत्तके मध्यस्थानमें केन्द्र कल्पनाद्वारा अन्त्यफलानुसार अन्य एकवृत्त रचना करे । मध्यग्रहस्थान और केन्द्रगत रेखाने जिस स्थानमें शेषोक्तवृत्तको बहुत दूरपर काटा है, वही " उच्च " रेखा है । इस वृत्तमें केन्द्रगतिद्वारा विपरीत दिशामें ग्रहगमन करता है । अतएव पूर्ववृत्तके जिस स्थानको ग्रह और केन्द्र-गत रेखाने भेद किया है वही ग्रह स्पष्ट स्थान है । चन्द्रमा और सूर्यका एक ही संस्कार करना पड़ता है । अन्य ५ ग्रहोंके लिये शीघ्रोच्च विधान है । मन्द संस्कारद्वारा किसी (रवि) एक स्थानगत स्पष्टमें परिणत करके शीघ्र संस्कार करनेसे स्फुट होगा । फल संस्कार प्रभृति त्रिभुजका एक कोण और दो बाहु (भुज) जाननेसे अन्य कोणका परिमाण ज्ञात होगा.



क ख और ख ग भुजद्वय और कोण क ख ग जानकर कोणके निर्णय कर-नेमें नीचे लिखी प्रक्रिया करनी चाहिये ।

$$\frac{\text{क}}{\text{ग}}\ \frac{\text{ग}}{\text{ख}} = \frac{\text{ज्या}}{\text{ज्या}}\ \frac{\text{ख}}{\text{क}}$$

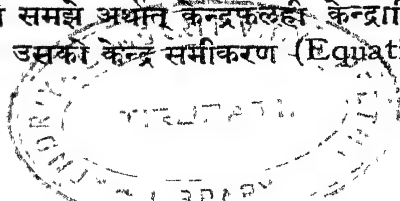
अर्थात् क=ख ग ज्या÷क ग । क ग^2 = क ख^2 + ग^2 − २ क ख×ख ग को ज्या ख । यहां ख ग अन्त्यफल ज्या, क केन्द्र और क ख त्रिज्या । इसलिये

ख १८० अंशसे अधिक अर्थात् तुलादि होनेसे फलवियोग करना होगा। कोटि ज्या मृगादि छः राशिमें जोड़ना या घटाना चाहिये। पृथिवीसे ग्रहकी कक्षा अतिदूर स्थानही ग्रह शीघ्रोच्च है। वस्तुतः रचनामें ग्रहगण वृत्ताभास मागम भ्रमण करते हैं। वृत्ताभासके दो विशेष बिन्दु है उनको पाश्चात्य पण्डितगण फोकस (Focus) कहते हैं। उक्त दो फोकसमेंसे एकमें सूर्य्य अवस्थित है। सूर्य्यसे सुदढवर्त्ती मार्ग बिन्दुही मन्दोच्च है। दूरता वशतः उच्च संज्ञा है। पृथिवीसे सूर्य्य स्थान ही उच्च स्थान है। कारण यह है जो सुदूर कक्षा बिन्दू उसी ओर अवस्थित है। भास्कराचार्य्यने स्पष्ट ही कहा है कि गणितमें फललाभके लिये यह सब कल्पित हुआ है। बुध और शुक्रकी विलक्षणताका कारण पहिले ही कहा गया है।

स्पष्ट और मध्य उदयादि अहर्गणके पार्थक्यवशतः उदयान्तर या उदगमान्तर संस्कार करना पडता है। निरक्ष ((Equator) प्रदेशमें मध्य सूर्य्योदय भिन्न दिनमें भिन्न समय होजाता है। इसका कारण यह है जो पृथिवीके आवर्त्तन समकालमें होनेसे भी मध्य सूर्य्य विषुवद् रेखाकी बराबर अंशादि गमन नही करता। रविमार्गमें उसकी गति ५९।८ है इसीको उदगमान्तर संस्कार कहते है।

स्वदेशीय उदय कालीन प्राणसे उपरोक्त अन्तर निर्णय करनेसे चार कर्म्म (शुद्ध) उदयान्तर होगा। निरक्ष प्रदेशस्थ उदयसे स्वदेशीय उदय-कालकी भिन्नता ही "चर" है। स्पष्ट सूर्य्य और मध्य सूर्यका उक्त प्रकार गतासु (प्राण) का अन्तरही भुजान्तर है। इसलिये स्पष्ट सूर्य परिमाणा-नुसार स्वदेशीय उदयास्तकी समष्टि (योग) से सूर्यकला वियोग करनेपर उक्त तीन संस्कार एकही वार सिद्ध होंगे।

पात दो प्रकारके अर्थमें व्यवहृत होते है। एक तो ग्रहमार्गने सूर्यवर्त्मको जिस स्थानमें भेद किया है वही पातस्थान है और दूसरा चन्द्रमा और सूर्यकी क्रान्ति तुलत्वभी पात शब्दसे व्यवहृत होता है। वैधृति और व्यती-पात) पातस्थानमें विक्षेप नहीं है। वहांसे ९० अंश दूरमें परम विक्षेप होता है केन्द्र अर्थमें मध्य और उच्चके अन्तरको (mean anomaly) जतलाता है. केन्द्र कहनेसे परिधि जातसंस्कारको समझे अर्थात् केन्द्रफलही केन्द्राक्षिप्त जनित अन्तर है। पाश्चात्य पण्डितगण उसको केन्द्र समीकरण (Equation fthe centre) कहते हैं।



केन्द्र "क" होनेसे उक्त फल=च ज्या क × छ ज्या २ क÷प्रभृति । च, छ प्रभृति स्थिराङ्क सब पहिलेही कहा गया है कि ग्रहगण प्रतिमण्डलमें अपनी गतिमें भी नीचोच्च वृत्तमें केन्द्रगतिके कारण भ्रमण करते हैं ।

प्रतिमण्डलमें मन्दोच्चसे अनुलोम एवं साधारण दिशामें और शीघ्रोच्चसे विपरीत दिशामें गमन करते हैं, नीचोच्च वृत्तमें उसके ठीक विपरीत होता है । उभयगति वस्तुतः एक स्थानगत पार्थक्यवशतः ऐसा अनुभव होता है । अतएव उक्त भङ्गी द्वय एकत्र रचना करनेसे नीचोच्च वृत्त और प्रतिवृत्तका योग स्थलमें दीख पडेंगे ।

मध्यगतिमें स्वकक्षा वृत्तमें भ्रमण करते हैं कहनेसेः मन्द नीचोच्च वृत्तका मध्यही ग्रहमध्य है । मन्दनीचोच्च वृत्तमें मन्द स्पष्टग्रहका शीघ्रनीचोच्च वृत्तका केन्द्र एवं शीघ्रोच्च वृत्तमें स्पष्टग्रह स्थित है इसी कारण शीघ्रनीचोच्च वृत्तके मध्यस्थान जाननेके लिये पहिले ही मन्दस्पष्ट निर्णय किया जाता है । किन्तु मान्द्य और शैघ्य फलका परस्पर सम्बन्धके कारण अनेकवार संस्कारका प्रयोजन पडता है । अधिकन्तु मान्द्य फल संस्कारमें विभिन्न कारणवशतः कर्ण ग्रहीत नहीं होता ।

दृक कर्म्म दो प्रकारका है । एक आयनदृक् कर्म्म और दूसरा आक्षदृक् कर्म्म । आयन दृक् कर्म्मद्वारा उन्मण्डलस्थित और आक्षदृक् कर्मद्वारा क्षितिजगत संस्कार किया जाता है ।

चतुर्थ प्रश्नके उत्तरमें त्रिप्रश्न वासनामें तृतीय आदि श्लोकमें लिखा है । शीर्षस्थ बिन्दुसे ९० अंश दूरमें ग्रहका विकाश होनेसे हमलोग उदय हुआ कहते हैं । विषुवत् रेखाके साथ समदूर स्थित रेखाही द्युरात्रवृत्त है । अहोरात्रमें सूर्य्य उसी वृत्तपर एक वार भ्रमण करता है । इष्टस्थान के उत्तर और दक्षिण दिग्गामी वृत्त निर्देश करके पूर्वापरगामी वृत्तनिर्णय करना चाहिये । शेषोक्त सम मण्डल नामसे कहा जाता है । आकाश बिन्दुसे ९० अंश दूरमें क्षितिज मण्डल अर्थात् जिस मण्डलमें आकाश और क्षितिज मिला है चारों दिशा इसी मण्डलमें अवस्थित हैं । पूर्व, पश्चिम और ध्रुव होकर जो वृत्त गया है वंही उन्मण्डल है । पूर्व पश्चिम और आकाश बिन्दुसे याम्योत्तर वृत्तमें दूसरे ध्रुव दिशामें अक्ष परिमाण दूरमें जो वृत्त गया है वही विषुवत् रेखा है । सूर्य्य विषुवत् रेखासे समदूरमें स्थित होकर जिस पथमें प्रतिदिन भ्रमण करता है । उसको द्युवृत्त कहते हैं । क्षितिज मण्डलसे उन्मण्डल अहोरात्रवृत्तमें भ्रमण करनेमें जो समय लगता है वही चरकाल

है । निरक्ष देशमे क्षितिज मण्डल ही उन्मण्डल है कारण यह है कि वहां ध्रुव क्षितिज स्थित है । उत्तर दिक् स्थित स्थानसमूहमें जब सूर्य्य उत्तर दिशामें भ्रमण करता है तो क्षितिजके उन्मण्डलके निम्न प्रदेशमें रहनेके कारण दिनकी वृद्धि होती है । उन्मण्डलमें आनेसे निरक्ष देशमें उदित होता है । किन्तु अन्य देशमें क्षितिजमें आनेहीसे होताहै । इसलिये क्षितिज नीचे रहनेहीसे पहिले उदय होता है । किन्तु निरक्ष देशमें दिवारात्र समान होता है । अतएव द्युरात्र मार्ग क्षितिज निम्नस्थ होनेसे दिनमान अधिक होगा, ६० दण्ड दिवारात्र कहनेसे रात्रि भाग कम होगा । सूर्य्य दक्षिणादिक स्थित होनेसे विषुवके उत्तर दिक् स्थित स्थान सबका क्षितिज है, उन्मण्डलके ऊर्ध्वभागमें अवस्थित है । ९० अंशसे अक्षांश वियोग करनेसे लम्ब (Colatitude) होगा । उक्त लम्बही आकाश (Zenith) से ध्रुव (Pole) का अन्तर है । लम्बापेक्षा सम दिक्स्थ क्रांति (Declinalion) अधिक होनेसे सूर्य्यास्त दृष्ट नहीं होगा, कारण यह है कि उस समय अहोरात्र वृत्त (Dearnulcircle) क्षितिज मण्डल भेद नही करता । आर्य्यगणने २४ अंश "परमापक्रम" लिखा है । इसालिये ६६ अंशके ऊपर अक्षांश विशिष्ट स्थान समूहमें यह घटना होसकती है । मेरुमें विषुवद्दही क्षितिज मण्डल है, अतएव विषुवद्से सूर्य्य मेरुकी ओर गत होनेसे दिन होता अन्यथा रात्रि होती है । मेरुही देवताओं और असुरोंका आवास स्थान है । सूर्य्य विषुवद्से एक ओर छ:मास रहनेसे दिवा:और रात्रिका यही परिमाण है । उत्तर मेरुमें बाईसे दहिनी ओरको आकाश मार्गसे सूर्य्यछः मास परिभ्रमण करता है । दक्षिण मेरुमें दक्षिणसे पूर्व गमन करता है । सूर्य्यप्रकाश ही जब दिन है तो देव और असुरको छः मास दिन एवं छ: मास रात्रि होती है । पितृलोक चन्द्रमाके ऊपर वास करता है इसलिये अमावास्या उन लोगोका मध्याह्न और पूर्णमासी उनकी निशार्द्ध है, इसी कारण उनका चन्द्रमानसे अहोरात्र होता है । चन्द्रमाको एकही ओर पृथिवीके सम्मुख स्थित होता है । इसलिये कृष्णाष्टमीही पितृलोगोंका प्रातः काल है । ब्रह्मा बहुत दूर अवस्थित हैं अतएव वह सदैव सूर्य्यको देखते हैं । सूर्य्यके विनाशर्य्यन्त उनका दिन होता है ।

१२ राशि समान हैं तथापि दिन रात्रि न्यूनाधिक क्यों होता है यही पञ्चम प्रश्न है । क्षितिज मण्डलमें उदयकालीन जितने समयतक संलग्न होता है वही उदयकाल है । भचक्र उस समय क्षितिज मण्डलमें ऊर्ध्वाधः होनेसे अधिक समय लगता है और तिर्यक्‌ताके साथ कालकी अल्पता होती है ।

निरक्ष देशमें मेषकी अपेक्षा वृषकी तिर्य्यक्ता अल्प है इसलिये काल अधिक लगता है । उत्तरअक्ष स्थानमें उनका तिर्यक्त्वका ह्रास होता है । निरक्ष प्रदेशमें और उन्मण्डलमें चक्रपाद (९० अंश) १५ दण्डमें उदय होता है । अन्यान्य प्रदेशमें चक्रार्द्ध ३० अंशमें उदय होता है । कारण यह है कि क्षितिज मण्डल विषुवद् रेखामें समावस्थित होता है । उन्मण्डलसे क्षितिज वृत्तके पार्थक्यवशतः ऐसा होता है । एवं राशिमानमें चर संस्कारका प्रयोजन होता है । गोलस्थितमहावृत्त सबका आधा भाग उदित रहेगा इसलिये क्रान्तिवृत्तका क्षितिज भेद ही लग्न है । एवं छः राशि दूरमें सप्तम राशि अवस्थित है । ६६ अक्षांशअधिक स्थानमें क्रान्तिवृत्तका कुछ अंश सदाही उदित रहता है । मेरुपर छः राशि सदाही उदित रहती हैं । अहोरात्र वृत्तका व्यासार्द्ध द्युज्या है । वह क्रान्तिकी कोटिज्याके तुल्य है । द्युवृत्तका जो अंश क्षितिज और उन्मण्डलके मध्यवर्ती है उसकी ज्या ही कुज्या है । क्रान्तिज्याको अक्षांश ज्या द्वारा गुणन करनेसे अक्षांश कोटि ज्याही ज्या द्वारा भाग करनेसे वह प्राप्त होता है ।

इसको पुनः क्रान्ति कोटिज्या द्वारा भाग करनेपर विषुवद् वृत्तमें परिणत होगा । शेषोक्त ज्या कलाही चर असु (प्राण) ध्रुववेध किंवा विषुवद्गत सूर्य्य वेधमें स्वदेशीय अक्ष होगा । जिस वृत्तमें सूर्य्य भ्रमण करता है वही क्रान्तिवृत्त वा "अपम" है ।

आकाश होकर जो सब वृत्त (Azimuth) क्षितिज मण्डल तिर्यक् भागपर भेद किया है वही दृढ मण्डल है । दृढमण्डलमें ग्रहोंकी उन्नति क्षितिजसे और आकाश बिन्दुसे अवनति दृष्ट होती है उन्नतांशकी ज्याही शंकु है । समवृत्तगत सूर्य्यके उदयांशकी ज्याही समशंकु है । द्युवृत्त और समवृत्तका क्षितिजभेद अन्तरकी ज्याही अग्रा है । क्रान्तिज्याको अक्षकोटि ज्या द्वारा भाग करनेसे वह प्राप्त होती है ।

भास्कराचार्य्यका छठा प्रश्न लम्बन और नतिजनित संस्कारकी प्रयोजनता सम्बन्धमें सूर्य्य और चन्द्रग्रहण पृथिवी, चन्द्रमा और सूर्य्यका अवस्थान जनित । पृथिवीकी छाया चन्द्रमाके ऊपर पड़कर उसको ढक लेती है । चन्द्रमामें अपना प्रकाश नहीं है । सूर्य्यकी किरण प्रतिबिम्बित होकर चन्द्रमाको प्रकाशित करती हैं ।

पृथिवीकी छाया गतिकी अपेक्षा पूर्वगामी चन्द्रमाकी गति अधिकताके कारण चन्द्रमा और भू छाया मण्डलमें प्रविष्ट करती है । किन्तु सूर्य्यग्रहण स्थानमें

चन्द्र मध्यवर्त्ती होकर सूर्य्यको आच्छादन करलेता है । शीघ्र पूर्वगामी चन्द्रमा सूर्य्यके पश्चिममें प्रवेश करता है ।

चन्द्रग्रहणमें देश भेदसे पार्थक्य होता नहीं-कारण यह है कि चन्द्रमा छाया द्वारा आवृत्त होनेसे सबही देशमें समान देखा जावेगा ।

पूर्णिमान्तमें पृथिवीकी छाया और चन्द्रमाकी कक्षाभी स्पष्ट तुल्य है अतएव उसी समय ग्रहण कहा जासकता है (सूक्ष्मविचारसे कुछ अन्तर होता है) किन्तु सूर्य्यग्रहणमें छाया भूमिमें पड़ती है । अतएव सब स्थानोंमें एकही कालमें किम्वा समभावसे दृष्ट नही होता ।

कक्षा भेदके कारण स्थानोक्षिप्ति जनित पार्थक्य होता है स्पष्टमें जो पार्थक्य होता है--उसको लम्बन और विक्षेपके पार्थक्यको नति कहते हैं पृथिवी पृष्ठस्थ मनुष्यके अवस्थान जनित लम्बन और नति होती है--कहकर पृथिवीका व्यास लिया जाता है । अवशेषमें चन्द्रमाका शुक्लत्वका ह्रास और वृद्धिका कारण पूंछकर अध्याय समाप्त किया है ।

तृतीय अध्यायमें ५९ श्लोक हैं । सांख्यमतानुसार प्रकृत पुरुषद्वारा किस प्रकार विश्वकी रचना हुइ है, भुवनमें किस प्रकार पृथिवी आधार शून्यमें स्थापित है ? उसका आधार विभाग, भूगोल, विवरण, क्षेत्रफल, विकाश, लोकावास एक२करके वर्णित है । पूर्वाध्यायमें ये विषय कहे गये है । ग्रंथकारने ५२ श्लोकमें कहा है कि परिधिको व्याससे गुणन करनेसे गोलका पृष्ठफल होगा ।

उननें दिखलाया है कि परिधि परिमाणानुसार व्यास करके वस्त्र खण्डमें वृत्त बनाय उसी वृत्त द्वारा गोलार्द्धका आधा आच्छादन करनेसे कुछ अधिक बचेगा किन्तु उक्त वस्त्रखण्डका आयतन गोलक्षेत्रकी अपेक्षा प्रायः "२" (२$\frac{१}{२}$) गुणमात्र है इसलिये गोलपृष्ठ गोलक्षेत्रकी अपेक्षा ५ गुणसे अधिक हो नहीं सकता ।

त्रिज्यासे भाग किया हुआ चक्र कलार्द्धको "या" (= — — =$\frac{}{७}$वा मूल १०) और व्यासार्द्धको "व्यार्द्ध" अभिहित करनेसे अंकशास्त्रानुसार परिधि=२ व्यार्द्ध×पा एवं गोलक्षेत्र=व्यार्द्ध^{२}×पा । परिधिका आधाव्यास करनेसे वस्त्र क्षेत्रफल=पा ($\frac{१}{४}$२ व्यार्द्ध पा) (२=पा $\frac{११}{७}$ व्यासार्द्ध) २=$\frac{१७१}{८५}$ पा×व्यासार्द्ध अर्थात् २॥ गुण अधिक ।

लल्लने परिधिघ्न वृत्तफलको पृष्ठफल कहकर सत्यको मिथ्या किया है ।

होना, दैत्योंको छः मासतक अन्धकार, पितृगणको हमारे एक महीनेकी बराबर अहोरात्र, लग्न और उसका उदयकालके स्थानगत और कालगत पार्थक्य, किस २ स्थानमें कौन २ राशि सर्वदा दृश्य होती है? यह एक २ व्याख्यामें कहा गया है। अन्तमें कितने ही क्षेत्रोंका व्यवहार कहकर अध्याय समाप्त हुआ है। लग्न लानेमें जो समय व्यवहृत होता है, वह सावन या नाक्षत्रिक है यह बात पूछी जासकती है। उदयगत सूर्य्यसे लग्न निर्णीत होनेपर नाक्षत्रिक किन्तु तात्कालिक सूर्य्यसे होनेपर सावन होगा। उसी सावन परिमाणानुसार उदितगत फलको उन्नत कहते हैं। उसकी ज्या छेदक नामसे कही गयी है। किन्तु दृङ्मण्डलगत उन्नत ही प्रकृत और उसकी ज्या शंकु है। उदयास्तसूत्रसे शंकुके निम्नदेशके पार्थक्य ही शंकुजल है। उत्तर जानेसे सतत दक्षिण ओर स्थित है। सममण्डलसे शंकु पदका पार्थक्य बाहु है।

[कोई एक वृत्त रचनाकर और आकाश करनेसे उसके सहित रेखाद्वारा केंद्र मिलावे, उक्त रेखाके सहित समकोण करके तिर्यग्भावसे क्षितिज वृत्त व्यास होगा, उसके एक छोरमें उत्तर और दूसरे छोरमें दक्षिण है। उत्तरसे अक्षांश दूरपर ध्रुव अवस्थित है, ध्रुव और केन्द्रयोग करे उसी रेखामें केन्द्रसे क्रान्ति ज्या की बराबर दूरमें समकोण करके तिर्यग्रेखा खचे, वही द्युवृत्तका व्यास होगा। उसी वृत्तपर सूर्य्य गमन करता है। सूर्य्यस्थानसे क्षितिज-व्यासका अन्तर शंकु है। द्युवृत्त व्यास जिस स्थानमें क्षितिज व्यास भेद करता है, वही अग्राग्र है उसी स्थानसे केन्द्रपर्य्यन्त अग्रा है]।

अष्टम अध्यायके ७४ श्लोकोंमें से २९ श्लोकोंमें ग्रहणका विषय है और अन्यान्य श्लोकोंमें वलन निर्देश किया है। सूर्य्यग्रहणमें पश्चिममें चन्द्रग्रहणमें पूर्वमें देशभेदसे पृथक्भावसे कालके भेदसे ग्रहण संघटित होता है। चन्द्रावरण बहुत बड़ा सूर्य्याकरण उसके तुल्य इत्यादि कारणसे राहुको कोई २ आच्छादक नही कहा चाहते, किन्तु वेद और संहिता सम्मत नही है। भास्कराचार्य्य कहते हैं कि चन्द्रग्रहणमें चन्द्रमा पृथिवीकी छायामें प्रवेश कर और सूर्य्यग्रहणमें चन्द्राधिरूढ होकर राहु (अन्धकार) में आवृत्त करता है। ऐसे कहनेसे दोष क्या? इसके बाद लम्बन दिखलानेके लिये भित्तमें भूपृष्ठगत दृक्सूत्रसे गर्भसूत्रके विभेदको दिखलाकर समकला-कालमें चन्द्रमा और सूर्य्यके अन्तरको लम्बन कहा है। लम्बन और नति लानेमे दृग्ज्या नतिका आकाश विक्षेप अर्थात् क्रान्तिवृत्तसे आकाशके

पार्थक्यद्वारा गुणन करे; गुणनफलमें दृगज्याका भाग देवे । भागफल नति होगी । किन्तु दृग्ज्या गत नति=परम नति × दृगज्या इसलिये नति= परम नति÷आकाश विक्षेप । दृग्ज्यागत नति वर्गसे नति वर्ग घटानेपर लम्बन होगा, गत्यन्तरका १५ अंशहीपर लम्बन है । लम्बन कलाको ६० से गुणन कर गत्यन्तरसे भाग करनेपर सम कला कालसे दृग्सम कलाकाल- होगा । शरमें नति संस्कार करलेपर स्पष्ट शर होगा ।

[गोल क्षेत्रके विषयमें कुछ अभ्यास न होनेसे विषय सब दुर्बोध होसकते हैं । पाठकगणके स्मरणार्थ कई एक सम्बन्ध निर्णीत हुए हैं । क, ख, ग, गोल क्षेत्रके तीनों कोण होनेसे ज्या क÷ज्या ख, ग=ज्या ख÷क ग=ज्या ग ÷ ज्या क ख ग समकोण होनेपर ज्या क ख=ज्या ग ख÷ज्या क । को ज्या क=को ज्या ग ख×ज्या ख । को ज्या क ख=को ज्या ख ग×को ज्या ग क]

उपरोक्त समीकरण संमीलनमें किसी निर्दिष्ट वृत्तसे अन्यवृत्त परिणत होनेपर निम्निलिखित समीकरण व्यवहार होता है । ज्या विक्षेप=को ज्या परमापक्रम×क्रान्ति ज्या—परमाक्रम ज्या×क्रांतिको ज्या×सरलोत्थान ज्या । स्पष्ट कोटी ज्या×विक्षेप कोटी ज्या×क्रन्ति कोटि ज्या×सरलोत्थान कोटी ज्या उपरोक्त परमापक्रमादिके स्थलमें अन्य अङ्क लेकर गणना होसकती है । इस प्रकार आकाशका सरलोत्थान और अक्षांशसे त्रिभोन लग्न और आकाश विक्षेप सहजहीमें लाया जावेगा । ख विक्षेप कोटि ज्या गुणित तात्कलिक परम नतिको स्पष्ट हीन त्रिभोन ज्या द्वारा गुणन कर विक्षेप ज्या द्वारा भाग करनेसे स्पष्ट लम्बन होगा । विक्षेप ज्याको विक्षेप कोटि ज्या गुणित स्पष्ट हीन त्रिभोन कोटि ज्या द्वारा भाग करनेसे जिस अंशकी ज्या होगी वह निर्णय करे निर्णीत कोणसे विक्षेप हीनकर ज्या करके परम नति गुणित ख विक्षेप ज्यासे गुणन करे गुणनफल निर्णीत कोण ज्या द्वारा भाग करने पर नति होगी । पण्डितवर वेसेल साहबने सूर्य्य ग्रहणकी प्रणाली की नयी प्रक्रिया निर्देश की है सूर्य्य और चन्द्रमाके मध्य होकर जो रेखा (छायाक्ष) गयी है । उसको समकोणकर पृथिवीके मध्य होकर सम विस्तार कल्पना करे उक्त विस्तारको विषुवद्मण्डल भेद करता है वह एवं

पृथिवी मध्यगामी उसके ऊपर तिर्यग् रेखा निर्दिष्ट रेखा निर्णय करनेमें समतलके ऊपर छायाक्ष प्रवेश बिन्दु निर्णय करे। वही बिन्दु चारों ओर छायवृत्तका स्थान होगा।

पृथिवीका जो प्रदेश उसमें प्रवेश करता है—वही 'ग्रस्त' है अध्यायके अन्तमें ३४ श्लोक 'वलन' बिषयमें लिखे हैं। रविमार्गके सहित संस्थान-वृत्तका अन्तरही स्पष्ट वलन है। उसको निर्णय करनेसे अयन और अक्ष वलन की आवश्यकता होती है। परमापक्रम ज्याको स्पष्ट कोटि ज्यासे गुणन कर क्रान्ति कोटि ज्या (द्युज्या) से भाग करनेपर आयन वलन होगा। कोटि ज्या अयन भेदमें परिवर्तित होता है। उसका नाम आयन वलन है। अक्ष ज्याको नति ज्या द्वारा गुणन कर द्युज्यासे भाग करनेपर अक्ष वलन होगा। दोनोंकी दिक् समतामें योग करे अन्यथा वियोग करनेपर स्पष्ट वलन होगा। क्रांति वृत्तके वृत्तपादान्तरमें जिस स्थानमें सम्पूर्ण विक्षेप मिला है उसको कदम्ब कहते हैं।

नवम अध्यायके २४ श्लोकोंमें दृक्कर्म्मसाधित हुआ है। क्रान्ति वृत्तका जो बिन्दु क्षितिज वृत्तमें भेद करता है उसको 'लग्न' कहते हैं। ग्रहक्रांति वृत्तस्थ होनेपर उदित होता है। किन्तु ग्रहगण क्रान्तिवृत्तसे स्वर शर परिमाणा-नुसार दूरमें अवस्थित है इस कारण स्पष्ट ही ग्रहोदय काल जाननेपर दृक् कर्म्मसंस्कार करना पड़ता है। यह संस्कार स्पष्ट वलनसे निर्दिष्ट होता है। ग्रह जब क्षितिजमें स्थित होता है तब उत्तराभिमुख क्षितिजही उत्तर ओर स्थापित होता है किन्तु शराभिमुख दूसरी ओरको क्रांतिवृत्तमें शरमूल उदय और ग्रहोदय कालीन क्षितिजमत् क्रान्तिवृत्त बिन्दुके अन्तर स्पष्ट वलनसे जाना जासकता है। भास्कराचार्य्यने दोनों वलनसे एक ही काल निर्णय किया है। अक्ष वलनको शरद्वारा गुणन अक्ष कोटि ज्यासे भाग करनेपर द्युवृत्तगत पार्थक्य होगा। उदयान्तरको क्रान्ति कोटिज्यासे भाग करनेपर विषुवद् ज्ञात होगा। उससे प्राण जाना जावेगा इस अवसरमें भास्कराचार्य्यने वलनानयन कालीन उत्क्रमज्या व्यवहारी-गणको विशेष भर्त्सना की है।

भास्कराचार्य्यने दशमाध्यायके ६ श्लोकोंमें शृङ्गोन्नति अर्थात् चन्द्रमाके शुक्लत्वकी उन्नति और अवनति निर्णय की है। वह कहते हैं कि सूर्य्य

और चन्द्रमाके ९० अंश पार्थक्य कालमें आधा चन्द्रमा दीखता नही । चन्द्रमा पृथिवीगत होनेपर उसी प्रकार होता है । चन्द्र कक्षा व्यासार्द्ध सूर्य्य कक्षाके ९० अंश पार्थक्य स्थानसे घटाने पर अर्द्ध चन्द्रकालमें दोनोंका अन्तर होगा उनने वह अंश ८४ । ४५ रक्खे है आधुनिक पण्डितगण-चन्द्रमाकी परमनति कला ५७ । २ । ७ और सूर्य्यकी विकला ८. ८ मात्र ग्रहण की हैं । सूर्य्य जिस ओरहो उसी औरसे ऊपरको और नीचेको चन्द्रमण्डल ९० अंश दीप्ति लाभ करता है । इस कारण पृथिवीस्थ मनुष्योंके निकट शृङ्गोन्नतिका पार्थक्य दीखता है ।

एकादशाध्यामें ५८ श्लोकमें यन्त्र सब वर्णित हैं । सब यन्त्रोंकी अपेक्षा "धी यन्त्र" (केवल बुद्धिही) को भास्कराचार्य्यने मान्य रक्खा है । गोल स्वतन्त्र अध्यायमें वर्णित हुआ है । उसके द्वारा किस प्रकार समयज्ञान होता है सो इस स्थलमें कहा गया है । नाडीबलय वृत्तमें विपरीत भावमें उदय प्राणात—सारे राशि सबका परिमाण कर ध्रुव यष्टि—में संरक्षण करनेपर यष्टि छायाद्वारा लग्न और उदयगत काल कल्पित होगा ताम्र—घटी शंकु यष्टि चक्र चक्रार्द्ध, चक्रपाद प्रभृति यन्त्र क्रमशः उल्लिखित हुआ है । भास्कराचार्य्यने १८० लम्बाई एवं ९० चौडाई विशिष्ट एक (सम चतुष्कोण) कोण फलक लेने कहा है । लम्बाईकी ओर मध्य भागमें एक तरफ एक रस्सी द्वारा झुलाना । फलक लम्बाई—में १८० भाग और चौडाईमें ९० भागकर पार्श्वके साथ समरेखा सब अंकित करना, रक्खे हुए बिन्दुके नीचे ३० रेखा दूरमें केंद्रकर एक वृत्त कल्पना करना उसी वृत्तमें एक छिद्रकर ६० परिमाणानुसार पट्टिका संलग्न करे । इस समय सूर्य्याभिमुख फलक इस प्रकार रखना जिसमें दोनों ओर प्रकाशित हो सूर्य्याभिमुख पट्टिकाको रक्खे उसी पट्टिकामें यष्टि परिमाणसे ग्रहणकर उसके आगे लम्ब रेखा समाभिमुख चर संस्कार कर जो तिर्यग् रेखा पायी जावेगी वह रेखा जिस बिन्दुमें वृत्तमें मिली है उसस्थानसे अधोबिन्दुही दिनार्द्धगत प्राण है । ऋतु चिह्नसे वर्ष चतुर्थांश जानकर छायाद्वारा स्पष्ट सूर्य्य जाना जाता है । एक हाथ परिमित यष्टि लेकर बुद्धिमान् व्यक्ति दूरता (Distance) जाननेमें समर्थ होगा । पदार्थविज्ञान और शिल्पके परिवर्त्तन जनित इन दिनों सब यन्त्रोकी क्रमशः सूक्ष्मता

होती जाती है। दोल-यन्त्र (Pendulum) को आविष्कार-में अतिसूक्ष्मांश कालपर्य्यन्त गणित होता है । दूरबीणकी सहायतासे भारतेय और माईक्रमिट प्रभृति यन्त्रके बलसे ग्रहोंकी सूक्ष्म दृगज्या अक्षांश प्रभृति गणित हुआ है । मध्ययन्त्र प्राप्ति मान मन्दिरमें रक्खकर दैनिक दिवा, मध्यभाग, निर्णयकर सूक्ष्म घटिका यन्त्रद्वारा अन्यान्य कालका निश्चय किया जाता है क्रान्तिवृत्तके किसपादमें सूर्य्य अवस्थित करता है इसके ज्ञानके लिये १५ श्लोकमें द्वादश अध्यायमें ऋतु वर्णन किया है । उनकी अपूर्व काव्यशक्ति गणितके कठिन रज्जु श्लथकर सुन्दर विकाश लाभ किया है ज्या को ज्या, गुणभाग वृत्तादि गणितशास्त्रके प्रयोजनीय अंश सब एक करके प्रथम ११ एकादश अध्यायमें यथासम्भव विचारकर लालित्यका आश्रय ग्रहणकर समाप्त किया है।

प्रश्नाध्यायमें पण्डितप्रवर भास्कराचार्य्यने स्वीय धी शक्तिकी पराकाष्ठा प्रदर्शन किया है। त्रयोदशाध्यायमें ६४ श्लोकमें भास्कराचार्यने प्रचलित गणित प्रश्नरूपसे समष्टि करके पाठक वर्गके मनमें विधि प्रभृति बद्ध करनेके लिये आलोचना की है । वर्ग, घन और मूलको छोडकर सब पाटी गणितही त्रिराशि गणितमें परिणत किया जाता है । किन्तु बीजगणित मनुष्योंकी बुद्धिसे उत्पन्न है। भास्कराचार्य्यने इस सूत्रमें कुट्टक् गणित (अर्थात् अज्ञात दो राशि एक समीकरण भूत होनेसे अन्य कोई विषय जाननेके लिये निर्देश करना) व्यवहार किया है।

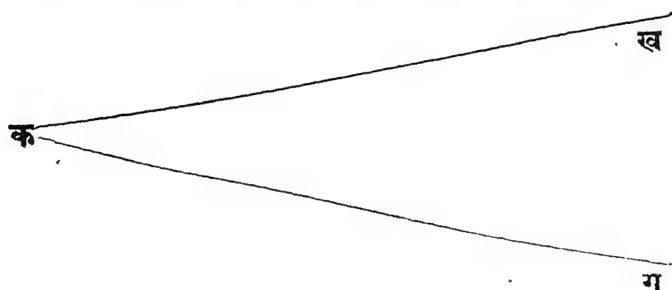
इस प्रकार गणना पाश्चात्य प्रदेशमें दिनोंसे प्रचरित हुई है। दो अज्ञात राशिका समीकरण आधुनिक अंकशास्त्रके अनुसार मध्यगत समतल कोई एक समतल रेखाका निर्देशमात्र है।

उसके ऊपर निर्दिष्ट बिन्दु निर्णय करनेसे और एक विशेप उल्लेख करना चाहिये उल्लेख साधारणतः किम्वा विशेषतः हो सकता है। इस विपयमें अधिक जाननेसे Theary of Indeterminate Equations नामके बीजगणितके अध्याय पाठकरनेसे स्पष्ट होगा ज्योतिप शास्त्रीय ग्रन्थोंमें थोडे परिश्रमसे इसकी अच्छी आलोचना नहीं हो सकती। १२ वें और १६ वें श्लोकके उत्तरमें १०००० सौर दिन हैं। ज्योत्पत्ति अध्यायकी आलोचना उसी अध्यायके शेषमें है ।

भारतीय ज्योतिषगणमें भास्कराचार्य्यका अवस्थान नितान्त एकैक है। सूर्य्यसिद्धान्तादि ग्रन्थ कालगण उनके पूर्वही सिद्धान्त शास्त्रकी विधि सब ज्योतिषशास्त्रकी विधि प्रभृति लेख बद्ध करगये हैं।

आर्य्यभट्ट और उनके अनुगामी प्रभाकर लल्ल प्रभृति गणिताध्यापक गणने एक २ में अपनी २ प्रतिज्ञा सब सर्वसाधारणमें प्रचार किया है । भास्कराचार्य्य स्वतन्त्र बुद्धि होनेपर भी पुराणका अनुकरण नहीं छोडसके आर्य्यभट्टका पृथिवी परिभ्रमण और पृथिवीका व्यास १०५० योजन प्रभृति उनने कहीं स्पष्ट स्वीकार नहीं किया। ज्योतिषशास्त्रके नये आविष्कारोंमें उद्गमान्तर संस्कार और फलक यन्त्रमात्र दृष्ट होता है । गणिताध्यायमें गति प्रभृतिमें यद्यपि संस्कार आदि देखे जाते हैं, तथापि उसके पूर्ववर्ती और परागत शास्त्रकार गणसे इस विषयमें उसको स्वतन्त्र नहीं करसकते। अयनांश सम्बन्धमें गोलाध्यायमें कोई मीमांसा नहीं की गई है, सत्य तो यह है कि गोलाध्यायमें उसका ज्योतिष शास्त्रका स्थल नहीं है । तथापि ग्रहादिककी कक्षा सन्बन्धमें प्रवह वायुके स्थानमें अनेक बातें कहनी थीं।

गोलाध्यायकी रचना कालमें भास्कराचार्य्यने अपनेको गणिताध्यायी कहकर परिचय दिया है। वृत्त और गोलसम्मत समस्त तत्त्वानिर्देश करनेकी उनकी इच्छा थी किन्तु स्वीय कल्पना कहांतक कार्य्यकारिणी करसके सो पाठकगण स्वयं विचार करें। केन्द्र भी दिशाके स्थान परिवर्त्तन जनित जो दूरादि विकार घटती है; उसीको उनने बहुत प्रकारसे उदाहरण द्वारा दिखलाया है। समतलस्थ किसी एक स्थानका परिचय देनेसे हम लोग अन्य एक बिन्दुसे उसका दूरत्व और स्थिर दिशासे अन्तर निर्देश करते हैं।



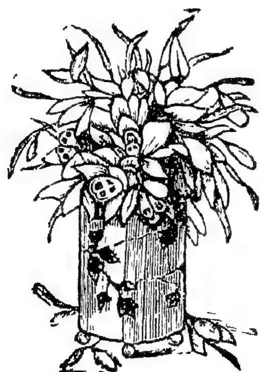
ख बिन्दुके परिचय देनेपर दूरत्व क ख और कोण ख क ग पहिले कहचुके हैं। स्थित बिन्दु परिवर्जित होनेपर अवश्य परिचयका भेद होगा।

भास्कराचार्य्यने इस भेदके ऊपर मिति स्थापन कर ग्रहादिकका स्पष्टादि निर्णय किया है।

गोलके ऊपर इस प्रकार भेद (Change of Co-ordiuates) जनित वलनादि निर्दिष्ट हुआ है। गणितशास्त्रमें प्रस्फुटित प्रतिभा भास्कराचार्यकी कुछगणितमें स्फूर्ति हुई है । गोल और समतल क्षेत्रमितिका (Trign-ometry) नियम सब उनके निकट परिस्फुट था ज्योत्पत्तिमें जिस प्रकार विधान दिया है, उसके द्वारा अतिसूक्ष्मरूपसे गणना की जाती है।

आधुनिकगणितके अतिशय आलोचनासे भास्कराचार्यको परीक्षा करनेपर इनको हम लोग जान नही सकते। दिक्गणित, अणुगणित वृत्ताभासगणित, प्रभृतिकी सहायतासे शक्तिविषय और ज्यानीतिके कारण गणितविज्ञानमें नये युगका आविर्भाव जानपडता है। विगत कालके महामनीषिगण उसके सामने प्रकाशरहित होरहे है इसमें सन्देह नहीं।

इति गोलाध्यायकी विवृत्ति समाप्त हुई ।



गोलाध्यायके वर्णक्रमानुसार संख्या-वाचक शब्दोंका अर्थ।



शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
अग्नि	३	गज	८	भुजङ्ग	८
अङ्क	९	गुण	३	भू	१
अङ्ग	६	गो	९	भूभृत्	७
अद्रि	७	चन्द्र	१	भूमि	१
अब्धि	४	छिद्र	९	यम	२
अभ्र	०	जिन	२४	युग	४
अमर	३३	तत्त्व	२५	रवि	१२
अम्बर	०	तिथि	१५	रस	६
अर्क	१२	दल	$\frac{१}{२}$	राम	३
अश्व	७	दशन	३२	रुद्र	११
अश्वि	२	दस्र	२	लोचन	२
अष्टि	१६	दिक्	१०	वाजि	७
अहि	८	द्विप	८	बाण	५
इन्दु	१	धृति	१	विश्व	१३
इन्द्र	१४	नख	२०	वेद	४
इषु	५	नन्द	९	शर	५
ऋतु	६	नाग	८	शैल	७
कर	२	पूर्ण	०	सागर	४
कु	१	प्राण	५	सायक	५
कृत	४	भ	२७	सिद्ध	२४
ख	०	भव	११	सूर्य्य	१२
गगन	०				

॥ श्रीः ॥

सिद्धान्तशिरोमणेः–

गोलाध्यायः

भाषाटीकासमेतः ।



सिद्धिं साध्यमुपैति यत्स्मरणतः क्षिप्रं प्रसादात्तथा
यस्याश्चित्रपदा स्वलंकृतिरलं लालित्यलीलावती ।
नृत्यन्ती मुखरङ्गगेव कृतिनां स्याद्भारती भारती
तं तां च प्रणिपत्य गोलममलं बालावबोधं ब्रुवे ॥ १ ॥

जिसके स्मरणके प्रसादसे सम्पूर्ण अभाव शीघ्रही सिद्ध होते हैं उसी जगदीशको एवं वाणीरूपी देवीकी कृपा होनेपर विचित्रपदविन्यासित माधुर्य्य गुणसम्पन्ना विशिष्टशोभायुक्त वाणी रङ्गभूमिमें नाचकी नाईं पण्डितोंके मुखमें नाच करती है । उसी सरस्वतीदेवीको प्रणामकर शिक्षार्थियोंके ज्ञानके लिये मैं (भास्कराचार्य्य) इस विशुद्ध गोलतत्त्वको कहता हूं ॥ १ ॥

मध्याद्यं द्युसदां यदत्र गणितं तस्योपपत्तिं विना
प्रौढिं प्रौढसभासु नैति गणको निःसंशयो न स्वयम् ।
गोले सा विमला करामलकवत्प्रत्यक्षतो दृश्यते
तस्मादस्म्युपपत्तिबोधविधये गोलप्रबन्धोद्यतः ॥ २ ॥

उपपत्ति (युक्ति) को न समझकर ग्रहमध्य और संस्थानादिकी गणनाकी शिक्षा कर और स्वयं सन्देहरहित न होकर पण्डितसभामें कोई गणक (ज्योतिषी) सम्मानकी प्रार्थना नहीं करसकता । मैंने इसप्रकार गणकतत्त्वगणनामें उपपत्तिलाभके लिये इस गोलप्रबन्धको विस्तारकर लिखा है इसके पढनेसे ज्योतिषीलोग गोलविद्याको हस्तामलककी नाईं करलेंगे ॥ २ ॥

भोज्यं यथा सर्वरसं विनाज्यं राज्यं यथा राज-
विवर्जितं च । सभा न भातीव सुवक्तृहीना गोला-
नभिज्ञो गणकस्तथात्र ॥ ३ ॥

घृतके विना जिस प्रकार सब प्रकारके रसोंका स्वाद लेना निष्फल है, राजाके विना राज्य, और सुवक्ताके विना सभा जिसप्रकार नाममात्रके होते हैं इसीप्रकर गोलतत्त्वसे अनभिज्ञ और अकर्म्मण्य ज्योतिषी होते है ।। ३ ।।

वादी व्याकरणं विनैव विदुषां धृष्टः प्रविष्टः सभां
जल्पन्नल्पमतिः स्मयात्पटुबटुर्भ्रूभंगवक्रोक्तिभिः ।
ह्रीणः सन्नुपहासमेति गणको गोलानभिज्ञस्तथा
ज्योर्वित्सदसि प्रगल्भगणकप्रश्नप्रपञ्चोक्तिभिः ॥ ४ ॥

व्याकरण न पढकर यदि कोई तार्किकधृष्टतासे पण्डितकी सभामें घुसजावे तो अल्पबुद्धि बालकलोग उसे जिसप्रकार वाक्यशर एवं भऔंटेढाकर उपहास कर लज्जा दिखलाते हैं, इसी प्रकार गोलविद्या न जाननेवाले व्यक्तिभी ज्योतिर्विदोंकी सभामें गोलविषयक प्रश्नकी मीमांसा करनेमें असमर्थ होकर लज्जास्पद होते हैं ।। ४ ।।

दृष्टान्त एवावनिभग्रहाणां संस्थानमानप्रतिपादनार्थम् ।
गोलः स्मृतः क्षेत्रविशेष एव प्राज्ञैरतः स्याद्गणितेन गम्यः॥५॥

गोल यन्त्र, पृथिवी, नक्षत्र एवं ग्रहोंका संस्थान परिमाण प्रतिपादनके लिये दृष्टांत स्वरूप स्वक्षेत्रविशेष गणितद्वारा पण्डितलोग इन विषयोंका निर्णय करेंगे ।। ५ ।।

ज्योतिः शास्त्रफलं पुराणगणकैरादेश इत्युच्यते
नूनं लग्नबलाश्रितः पुनरयं तत्स्पष्टखेटाश्रयम् ।
ते गोलाश्रयिणोऽन्तरेण गणितं गोलोऽपि न ज्ञायते
तस्माद्यो गणितं न वेत्ति स कथं गोलादिकं ज्ञास्यति ॥६॥

पौराणिक ज्योतिषीलोग कहते है कि गणित ज्योतिष तो केवल शुभाशुभफलनिर्णयहीके लिये है । लग्न, बल, और ग्रहस्पष्टद्वाराही फल निर्भर करता है । इन सब गणनाओं एवं गोलतत्त्वकी अभिज्ञताके लिये इसका प्रयोजन होता है गणितशास्त्रमें योग्यता न होनेसे गोल का ज्ञान नहीं होता। इसकारण गणित न जाननेवाले गोलतत्त्वको कैसे समझेंगे ।। ६ ।।

द्विविधगणितमुक्तं व्यक्तमव्यक्तयुक्तं तदवगमननिष्ठः
शब्दशास्त्रे पटिष्ठः । यदि भवति तदेदं ज्योतिषं
भूरिभेदं प्रपाठितुमधिकारी सोऽन्यथा नामधारी ॥ ७ ॥

गणित दो प्रकारके हैं एक व्यक्त दूसरा अव्यक्त अर्थात् अङ्कगणित और बीजगणित । इन्हीं दो प्रकारके गणितमें पारदर्शिता एवं शब्दशास्त्र (व्याकरण) में प्रवीणता होनेसे ज्योतिषशास्त्रके सर्वाङ्ग पढनेके अधिकारी हो सकता है अन्यथा नाममात्र ज्योतिषी कहलाना है ॥ ७ ॥

यो वेद वेदवदनं सदनं हि सम्यग् ब्राह्म्याः स वेद-
मपि वेद किमन्यशास्त्रम् । यस्मादतः प्रथममेतद-
धीत्य धीमान् शास्त्रान्तरस्य भवति श्रवणेऽधिकारी ॥ ८ ॥

जिनने वेदके मुखस्वरूप एवं वाणीके घरस्वरूप व्याकरणमें अधिकारलाभ किया है वही वेदाङ्गशास्त्र एवं वेदमें ज्ञानलाभ कर सकते हैं । जिसकारण व्याकरणशास्त्रको पढकर तब दूसरे शास्त्रको पढ़नेकी योग्यता होती है ॥८॥

गोलं श्रोतुं यदि तव मतिर्भास्करीयं शृणु त्वं
नो संक्षिप्तो न च बहुवृथाविस्तरः शास्त्रतत्त्वम् ।
लीलागम्यः सुललितपदः प्रश्नरम्यः स यस्माद्
विद्वन्विद्वत्सदसि पठतां पण्डितोक्तिं व्यनक्ति ॥ ९ ॥

इति गोलप्रशंसा ।

हे विद्वन् ! यदि गोलतत्त्व जाननेकी इच्छा हो तो मेरा बनाया (भास्कराचार्य्यने अत्यन्त संक्षिप्त और न बहुत विस्तृत सुललित पदोंमें लिखा हुआ सुबोध्य एवं सुन्दर प्रश्नावली संयुक्त गोलाध्याय नामक ग्रंथ पढिये । इसके पढनेसे पण्डितोंके ज्ञानोपयोगी यथार्थ ज्ञानलाभ होगा ॥ ९ ॥

इति गोलप्रशंसा समाप्ता ।

गोलस्वरूपप्रश्नाः ।

भ्रमद्भचक्रचक्रान्तर्गगने गगनेचरैः ।
वृता वृता धरा केन येन नेयमियादधः ॥ १ ॥

यह जो पृथिवी आकाश मण्डलमें भ्रमणशाली ग्रहोंसे घिरी हुई अचल नक्षत्रपुञ्जसहित राशिचक्रकी कक्षामें अवस्थित है । यह किसके द्वारा धारण की हुई है किंवा किसप्रकार धृत है ? जो आकाशमें नीचे नहीं गिर सकती ॥ १ ॥

किमाकारा कियन्माना नानाशास्त्रविचारणात् ।
कीदृग् द्वीपकुलाद्रीन्द्रसमुद्रैर्मुद्रितोच्यताम् ॥ २ ॥

इस पृथिवीका आकार परिमाण एवं इसके ऊपर प्रधान उपद्वीप पर्व्वत और समुद्र इत्यादि जो स्थित हैं उनका विवरण अलग२ मत संशोधित करके मुझे कहिये ॥ २ ॥

संसिद्धाद् द्युगणाद्युगादिभगणैः खेटोऽनुपातेन यः
स्यात्तस्यास्फुटता कथं कथमथ स्पष्टीकृतिर्नैकधा ।
किं देशान्तरमुद्भमान्तरमहो बाह्वन्तरं किं चरं
किं चोच्चं मृदु चञ्चलं च तदिदं कस्तात पातः स्मृतः ३॥

हे तात ! उत्तमरीतिसे गणित, अहर्गणद्वारा युगके भगण, अनुपात करनेसे उन्होंके स्थित स्थान क्यों ठीक नहीं होता ? या क्यों नहीं सब ग्रहोंका स्पष्ट संस्कार एकही प्रकारसे किया जाता ? देशान्तर उदयान्तर भुजज्या इत्यादि जो उत्पन्न होते हैं वे क्या हैं ? मन्दफल एवं शीघ्रफल किसको कहते हैं ? चर संस्कार; उच्च, मृदूच्च, चञ्चलोच्च और पात किसप्रकार होते हैं ॥ ३ ॥

किं केन्द्रं किमु केन्द्रजं किमु चलं किं वाचलं तत्फलं
कस्मात्तत्सहितः कुतश्च रहितः खेटः स्फुटो जायते ।
किं दृक्कर्म्म तथोदयास्तसमये द्वेधा विदध्युर्बुधाः
सर्वं मे विमलं वदामलमलं गोलं विजानासि चेत् ॥ ४ ॥

केन्द्र क्या है ? किंवा केन्द्रज ही क्या है ? चल और अचल जातफल क्या हैं ? क्यों इनके साथ जोड़ने वा घटानेसे ग्रहमध्य स्पष्ट (True) होता है पण्डित लोगोंने जो दो प्रकारके दृक्कर्म्म (आयन दृकर्म और आक्षदृक्कर्म्म) की व्यवस्था की है सो क्या है ? आपको यदि गोलविद्या उत्तमरीतिसे आती हो तो स्पष्ट करके सबका उत्तर दीजिये ॥ ४ ॥

महदहः किमहो रजनी तनुर्दिनमणौ गणकोत्तरगोलगे ।
ननु तनुर्दिवसो महती निशा वद विचक्षण ! दक्षिणदिग्गते ५

हे विचक्षण ! महद्गणक बतलाइये कि जब सूर्य उत्तरगोलार्द्धमें दीखता है तो रात छोटी क्यों होती है ? और सूर्य्यके दक्षिणायन होनेपर: दिन छोटा एवं रात बडी क्यों हुआ करती है ? ॥ ५ ॥

भवति किं द्युनिशं द्युनिवासिनां द्युमणिवर्षमितश्च सुरद्विषाम्। पितृषु किं शशिमासमितं तथा युगसहस्रयुगं द्रुहिणस्य किम् ॥ ६ ॥

उत्तर ध्रुव निवासी और दक्षिण ध्रुव निवासी आदिके दिनरात ? एक सौरवर्षकी बराबर, चन्द्रलोक निवासियोंका एक चान्द्रमासके तुल्य एक अहोरात्र और ब्रह्माका एक अहोरात्र २००० युग वर्षका क्यों होता है ?॥६॥

भवलयस्य किलार्कलवाः समाः किमसमैः समयैः खलु राशयः। समुपयान्त्युदयं किमु गोलविन् न विषयेष्वखिलेष्वपि ते समाः ॥ ७ ॥

हे गोलविद्यावित् राशिचक्रके १२ समान भाग हैं परंतु इनका उदय असम समयमें क्यों होता है ? अर्थात् क्यों इनका समय सर्वदा तुल्य नही होता ? ॥ ७ ॥

द्युज्याकुज्यापमसमनराग्राक्षलम्बादिकानां
विद्वन् गोले वियति हि तथा दर्शय क्षेत्रसंस्थाम्।
तिथ्यन्ते चेद्ग्रह उडुपतेः किं न भानोस्तदानी-
मिन्दोः प्राच्यां भवति तरणेः प्रग्रहः किं प्रतीच्याम्॥८॥

हे विद्वन्! आकाशगोलमें जिसप्रकार द्युज्या, कुज्या, अपमज्या, या क्रांतिस्थान समशंकु अग्रज्या, अथ लम्बनादि सब अवस्थित हैं इनको मुझे क्षेत्रसंस्थानमे चक्रके मध्यमें दिखलाइये और पूर्णमासीके शेष भागमें चन्द्रग्रहण होता है परन्तु उसी समय सूर्य्यग्रहण क्यों नही होता ? क्यों सूर्य्यग्रहण अमावास्याको होता है ? और क्यों चन्द्र ग्रहणमें चन्द्रमण्डलके पूर्वकी ओर ग्रहण आरम्भ होता है ? और सूर्य्यग्रहण पश्चिममें क्यों आरम्भ होता है ? ॥ ८ ॥

लम्बनं बत किं का च नतिर्मतिमतांवर।
तत्संस्कृतिस्तिथौ बाणे किं ते सिद्धे कुतः कुतः ॥ ९ ॥

हे पण्डितश्रेष्ठ! लम्बन क्या है ? या नतिही क्या है ? और किसकारण तिथिमें लम्बनसंस्कार करना पडता है ? या क्यों चन्द्रमाके अक्षमें नतिसंस्कार करनेकी आवश्यकता होती है ? और क्यों लम्बन और नति पृथिवीके व्यासार्द्धसे साधित होती है ॥ ९ ॥

शुक्लस्य द्विजराज एष महसो हान्या कुवृत्तः कुतः
सद्वृत्तत्वगतोऽप्यहो भ्रमभवाद्दोषातिसंगादिव ।
सम्प्राप्याथ पुनस्त्रयीतनुमतस्तस्याश्रयेणैव किं
शुक्लस्य क्रमशस्तथैव महसो वृद्ध्यैति सद्वृत्तताम् ॥ १० ॥

इति सिद्धान्तशिरोमणौ गोलस्वरूपप्रश्नाध्यायः ।

इसका आशय यह है कि पूर्णमासीके अनन्तर पक्षभर चन्द्रमाकी दीप्ति क्रमशः घटती क्यों जाती है? इसीप्रकार अमावास्याके पीछे पक्षभर चन्द्र-कला क्रमशः बढती क्यों जाती है ॥ १० ॥

यह गोलस्वरूपप्रश्नाध्याय समाप्त हुआ ।

यस्मात्क्षुब्धप्रकृतिपुरुषाभ्यां महानस्य गर्भे-
ऽहंकारोऽभूत् खकशिखिजलोर्व्यस्ततः संहतेश्च ।
ब्रह्माण्डं यज्जठरगमहीपृष्ठनिष्ठाद्विरञ्चेर्विश्वं
शश्वज्जयति परमं ब्रह्म तत्तत्त्वमाद्यम् ॥ १ ॥

वही आदितत्त्व परमब्रह्म सर्वदा जययुक्त होता है जिसके द्वारा क्षुब्ध प्रकृति पुरुषसे महान् प्रकट होता है। महान्से अहङ्कार अहङ्कारसे आकाश, जल, वायु, और भूमि ये पांचतत्त्व उत्पन्न हुये। इन्हीं सबके समष्टि वा योगका नाम ब्रह्माण्ड है। इस ब्रह्माण्डमें ब्रह्मा व्यापक होकर विश्वकी रचना करता है ॥ १ ॥

भूमेः पिण्डः शशांकज्ञकविरविकुजेज्यार्किनक्षत्रकक्षा-
वृत्तवृत्तोवृत्तः सन्मृदनिलसलिलव्योमतेजोमयोऽयम् ।
नान्याधारः स्वशक्त्यैव वियति नियतं तिष्ठतीहास्य पृष्ठे
तिष्ठं विश्वञ्च शश्वत्सदनुजमनुजादित्यदैत्यं समन्तात् ॥ २ ॥

भूपिण्ड—चन्द्रमा, बुध, शुक्र, रवि, बृहस्पति, शनि और नक्षत्रकी कक्षासे आवृत्त एवं मृत्तिका, अग्नि, जल, आकाश, और तेज गाढित है, इसका आधार कुछ नहीं अपनी शक्तिबलसे शून्यमें सदा रहता है। इसके पृष्ठ देशमें सदा असुर, (जातिविशेष) मनुष्य, देव, दैत्य, प्रभृतिके साथ विश्व अवस्थित करता है ॥ २ ॥

सर्वतः पर्वताराममग्रामचैत्यचयैश्चितः ।
कदम्बकुसुमग्रन्थिः केसरप्रकरैरिव ॥ ३ ॥

यह भूगोल कदम्बके फूलके केशरके फैलावसा सब ओर पर्वत, आराम, ग्राम, और अट्टालिका आदिसे घिरा हुआ है ॥ ३ ॥

मूर्त्तो धर्त्ता चेद्धरित्र्यास्ततोऽन्यस्तस्याप्यन्योऽस्यैव-मत्रानवस्था । अन्त्ये कल्प्या चेत्स्वशक्तिः किमाद्ये किं नो भूमेः साष्टमूर्त्तेश्च मूर्तिः ॥ ४ ॥

यदि इस पृथिवीका धारण करनेवाला कोई मूर्तिमान् व्यक्ति (जैसा कि पौराणिक या मुसलमान मानते हैं) माना जावे, तो उस मूर्त्तिमान् व्यक्तिका धारण करनेवाला किसी अपर मूर्त्तिमान्को मानना पडेगा, एवं इसी प्रकार दूसरेका धारण करनेवाला तीसरा धारक मानना पडेगा इस प्रकार असंख्य धारककी कल्पना करनी पडेगी और अन्तमें शेषको अपनी शक्तिद्वारा धृत कल्पना करनी होगी तो इससे प्रथमहीकी धारणात्मिका शक्ति कहनेमें दोष क्या है ! क्या पृथिवी आठ मूर्तियों (वसुओं) में से एक मूर्त्ति नहीं है ? ॥ ४ ॥

यथोष्णतार्कानलयोश्च शीतता विधौ द्रुतिः के कठिनत्वमश्मनि । मरुच्चलो भूरचला स्वभावतो यतो विचित्रा बत वस्तुशक्तयः ॥ ५ ॥

सूर्य्य और अग्निकी उष्णता, चन्द्रमाकी शीतलता, जलकी द्रवता,पत्थरकी कठिनता, वायुकी संचालनी शक्ति और पृथिवीका अचल होना प्रभृति गुण स्वाभाविक है । अहो ! वस्तुओंकी शक्ति विचित्र है ॥ ५ ॥

आकृष्टिशक्तिश्च मही तया यत् खस्थं गुरुं स्वाभिमुखं स्वशक्त्या । आकृष्यते तत्पततीव भाति समेसमन्तात् क्व पतत्वियं खे ॥ ६ ॥

पृथिवीमें आकपर्णशक्ति है। पृथिवी अपनी आकर्षण शक्तिसे गुरुपदार्थको अपनी ओर खीचती है आकर्पण समय गिरती सी जानपड़ती है परन्तु चारों ओर तो आकाशका परिमाण तुल्य है–फिर पृथिवीका पतन किस प्रकार सम्भव होसकता है ? ॥ ६ ॥

भपञ्जरस्य भ्रमणावलोकादाधारशून्या कुरिति प्रतीतिः ।
खस्थं न दृष्टञ्च गुरु क्षमातःखेऽधःप्रयातीति वदन्ति बौद्धाः ७

भूमण्डलके भ्रमणको देखकर पृथिवीका आधाररहिता होना बोध होता है एवं पृथिवीके अलग होकर शून्यमें किसी गुरुपदार्थको अपने आप ठहरते नहीं देखकर बौद्धलोग कहते हैं कि पृथिवी आकाशके नीचेकी ओर जाती है॥७॥

द्वौ द्वौ रवीन्दू भगणौ च तद्वदेकान्तरौ तावुदयं व्रजेताम् ।
यदब्रुवन्नेवमनम्बराद्या ब्रवीम्यतस्तान् प्रतियुक्तियुक्तिम् ॥८॥

जैनलोग कहते है कि सूर्य्य दो,चन्द्रमा दो,राशिचक्र प्रभृति हैं जिन दो २ मेंसे एक २ के भीतर दूसरेका उदय होता है इसका उत्तर मैं कहता हूं ॥८॥

भूः खेऽधः खलु यातीति बुद्धिर्बौद्ध ! मुधा कथम् ।
जाता यातन्तु दृष्ट्वापि खे यत्क्षिप्तं गुरु क्षितिम् ॥ ९ ॥

हे बौद्ध ! जिससमय किसी वस्तुको फेंकते हो तो फेंकते समय वस्तु पुनः पृथिवीमें गिरती है—इसको देखते हुए और पृथिवीको गुरुपदार्थ जानते हुए भी—पृथिवी शून्यमें नीचेको पतित होती है—ऐसा भ्रम मूलक विश्वास क्यों करते हो ? ॥ ९ ॥

किङ्गुण्यं तव वैगुण्यं द्वैगुण्यं यो वृथा कृथाः ।
भार्केन्दूनां विलोक्याह्ना ध्रुवमत्स्यपरिभ्रमम् ॥ १० ॥

जब ध्रुवनक्षत्रका परिभ्रमग प्रतिदिन देखतेहो तो चन्द्रमा, सूर्य्यादिकी दो २ व्यर्थ कल्पना क्यों करते हो ? एक क्या तुम्हारे वैगुण्यमें न गिना जावे ? ॥ १० ॥

यदि समा मुकुरोदरसन्निभा भगवती धरणी तरणिः क्षितेः ।
उपरि दूरगतोऽपि परिभ्रमन्किमु नरैरमरैरिव नेक्ष्यते ॥११॥

यदि यह पृथिवी दर्पणोदरकी नाई समतल होती तो इसके ऊपर और दूर भ्रमण करनेसे सूर्य्य क्यों नही देव और मनुष्योंको दृष्ट होगा ? ॥ ११ ॥

यदि निशाजनकः कनकाचलः किमु तदन्तरगः स न दृश्यते।
उदगयं ननु मेरुरथांशुमान् कथमुदेति च दक्षिणभागके १२

यदि कनकाचलही रात्रि होनेमें कारण होता है तो सूर्य्यके भीतर जाने-पर वह पहाड क्यों नही दीखता ? मेरु उत्तरगोलमें अवस्थित है तो सूर्य्य किसप्रकार दक्षिण गोलमें दृश्य होगा ? ॥ १२ ॥

समो यतःस्यात्परिधेःशतांशःपृथ्वी च पृथ्वी नितरां तनीयान्।
नरश्च तत्पृष्ठगतस्य कृत्स्ना समेव तस्य प्रतिभात्यतः सा १३

परिधिका शतांश (१०० वां हिस्सा) जैसे तुल्यरूपसे बोध होता है, पृथिवी, मनुष्यकी अपेक्षा अत्यन्त बडी है–इसलिये पृथिवीस्थ व्यक्तिके निकट भूमि समतल जान पड़ती है ॥ १३ ॥

पुरान्तरं चेदिदमुत्तरं स्यात्तदक्षविश्लेषलवैस्तदा किम् । चक्रांशकैरित्यनुपातयुक्त्या युक्तं निरुक्तं परिधेःप्रमाणम् १४

दो उत्तर या दक्षिणस्थ नगरीके अन्तर योजनमें यदि अक्षान्तरांश होता है तो चक्रांशके कितने योजन परिधि होगी ? त्रैराशिक द्वारा सहजमें ज्ञात होजावेगी ॥ १४ ॥

निरक्षदेशात्क्षितिषोडशांशे भवेदवन्ती गणितेन यस्मात् । तदन्तरं षोडशसंगुणं स्याद्भूमानमस्माद्बहु किं तदुक्तम्॥१५॥

गणितद्वारा जाना गया है कि जो निरक्ष प्रदेशसे अवन्तीके अक्ष चक्रका १६ वां भाग है, इसलिये उसी अन्तर योजनादि १६ से गुणन करनेपर पृथिवीका परिमाण ज्ञात होजाता है । इस विषयमें अधिक क्या कहूंगा॥१५॥

शृङ्गोन्नतिग्रहयुतिग्रहणोदयास्तच्छायादिकं परिधिना घटतेऽमुनाहि । नान्येन तेन जगुरुक्तमहीप्रमाणप्रामाण्यमन्वययुजा व्यतिरेककेण ॥ १६ ॥

शृङ्गोन्नति, ग्रहयुति, ग्रहण, उदयास्त और छायादि–इसी परिधिके अनुसार संघटित होती है । अन्य प्रकारसे पृथिवीकी परिधिकी कल्पना करनेसे ये सब ठीक २ नहीं मिलते, अन्वय और व्यतिरेक युक्ति (Positine Nigatine) से प्रमाणित होता है ॥ १६ ॥

लंका कुमध्ये यमकोटिरस्याः प्राक् पश्चिमे रोमकपत्तनं च । अधस्ततः सिद्धपुरं सुमेरुः सौम्येऽथ याम्ये वडवानलश्च ॥ १७ ॥

लंका (यह लंका जिसको इनदिनों ' सीलोन ' कहते हैं–सो नहीं बरन् दूसरी लङ्का थी जो प्राक् किसी टापूमें होगयी) भूमध्यगत है इसके पूर्वमें यमकोटी पश्चिममें रोमकपत्तन लङ्काके निम्नभागमें सिद्धपुर उत्तरमें सुमेरु और दक्षिणमें वडवानल है ॥ १७ ॥

कुवृत्तपादान्तरितानि तानि स्थानानि षड् गोलविदो वदन्ति । वसन्ति मेरौ सुरसिद्धसङ्घा और्वे च सर्वे नरकाः सदैत्याः ॥ १८ ॥

गोलविश्व जाननेवाले पण्डितलोग कहते हैं कि पूर्वोक्त छः स्थान परस्पर भूवृत्तके चतुर्थांश परिमाण व्यवधानमें अवस्थित हैं । मेरुपर देवता, सिद्ध व्यक्ति वास करते हैं, वडवानलमें नरक सब विद्यमान हैं ॥ १८ ॥

यो यत्र तिष्ठत्यवनीं तलस्थामात्मानमस्या उपरि स्थितं च । स मन्यतेऽतः कुचतुर्थसंस्था मिथश्च ते तिर्यगिवामनन्ति ॥ १९ ॥

जो जिस स्थानमें रहता है पृथिवीको नीचे एवं अपनेको उपरिस्थित समझता है, जो लोग परस्पर पृथिवीके चतुर्थ भाग दूरमें अवस्थित हैं, ये तिर्यग्भावसे परस्पर अवस्थित हैं ॥ १९ ॥

अधः शिरस्काः कुदलान्तरस्थाश्छायामनुष्या इव नीरतीरे । अनाकुलास्तिर्यगधः स्थिताश्च तिष्ठन्ति ते तत्र वयं यथात्र ॥ २० ॥

जलतीरस्थ मनुष्यकी जलकी भीतरकी छायाकी नाईं पृथिवीके ऊपर अर्धस्थित व्यक्तिका मस्तक वस्तुतः निम्नभागमें अवस्थित होता है । अधः और तिर्यक् स्थित व्यक्तिगण हमलोगोंकी नाईं सुखसे रहते हैं ॥ २० ॥

भूमेरर्द्धं क्षारसिन्धोरुदक्स्थं जम्बूद्वीपं प्राहुराचार्यवर्याः । अर्द्धेऽन्यस्मिन् द्वीपषट्कस्य याम्ये क्षारक्षीराद्यम्बुधीनां निवेशः ॥ २१ ॥

आचार्य्यवर्य्य लोगोंने कहा है कि लवण समुद्रके बीचमें जम्बूद्वीप पृथिवीके अधोभागमें व्याप्त है । और दक्षिणार्द्धमें अन्यान्य छः द्वीप क्षार और क्षीरोदादि समुद्रसहित अवस्थित हैं ॥ २१ ॥

लवणजलधिरादौ दुग्धसिन्धुश्चतस्मादमृतममृतरश्मिः श्रीश्च यस्माद्बभूव । महितचरणपद्मः पद्मजन्मादिदेवैर्वसति सकलवासौ वासुदेवश्च यत्र ॥ २२ ॥

लवण सिन्धु पहिल, तब दक्षिणमें दुग्ध समुद्र जिसमें अमृत, चन्द्रमा और लक्ष्मी उदित हुई थी । और वहां सबका आश्रय वासुदेव ब्रह्मादि देवद्वारा सेवा करते हुए वास करते हैं ॥ २२ ॥

दध्नो घृतस्येक्षुरसस्य तस्मान्मद्यस्य च स्वादुजलस्य चान्त्यः ॥ स्वादूदकान्तर्वडवानलोऽसौ पाताललोकाः पृथिवीपुटानि ॥ २३ ॥

उसके अनन्तर दधिसमुद्र, घृतसमुद्र, ऐक्षवसमुद्र, मद्य और सबके अंतमें स्वादुजलका समुद्र है। वडवानल स्वादुजलके भीतर है । पृथिवीके पुट (निम्नभाग) में पाताल लोककी अवस्थिति है ॥ २३ ॥

चञ्चत्फणामणिगणांशुकृतप्रकाशा एतेषु सासुरगणाः फणिनो वसन्ति ॥ दीव्यन्ति दिव्यरमणीरमणीयदेहैः सिद्धाश्च तत्र च लसत्कनकावभासैः ॥ २४ ॥

चञ्चालित फणा मणिगणके किरण द्वारा प्रकाशित होकर असुरगणके साथ इस प्रदेशमें सर्पगण वास करते हैं। कनकवर्ण रमणीय देह सम्पन्ना दिव्य रमणी लोगके साथ सिद्धगण वहां शोभाको प्राप्त होते है ॥ २४ ॥

शाकं ततः शाल्मलमत्र कौशं क्रौञ्चञ्च गोमेदकपुष्करे च । द्वयोर्द्वयोरन्तरमेकमेकं समुद्रयोर्द्वीपमुदाहरन्ति ॥ २५ ॥

दो दो समुद्रके बीचमें स्थित होकर क्रमसे शाकद्वीप, शालमलि द्वीप, क्रौंच द्वीप, गोमेद द्वीप और पुष्कर द्वीप, स्थापित है ॥ २५ ॥

लंकादेशाद्धिमगिरिरुदग्घेमकूटोऽथ तस्मा-
त्तस्माच्चान्यो निषध इति ते सिन्धुपर्य्यन्तदैर्घ्याः ।
एवं सिद्धादुदगपि पुराच्छृंगवच्छुक्लनीला
वर्षाण्येषां जगुरिह बुधा अन्तरे द्रोणिदेशान् ॥ २६ ॥

लंकाके उत्तरमें हिमागिरि, उसके उत्तरमें हेमकूट, उसके उत्तरमें निषध पर्वत है। ये सब एक समुद्रसे दूसरे समुद्र पर्य्यन्त दीर्घ हैं। इसी प्रकार सिद्धपुरीके उत्तरमें क्रमशः शृङ्गव, शुक्ल और नील पर्व्वत है। दो पर्वतोंके मध्य प्रदेशमें विज्ञलोगोंने सब वर्ष कहे हैं ॥ २६ ॥

भारतवर्षमिदं ह्युदगस्मात्किन्नरवर्षमतो हरिवर्षम् ।
सिद्धपुराच्च तथा कुरु तस्माद्धिद्धि हिरण्मयरम्यकवर्षे ॥२७॥

यही भारतवर्ष, इसके उत्तरमें किन्नरवर्ष उसके उत्तरमें हरिवर्ष है । सिद्धपुरसे उत्तरोत्तर कुरु, हिरण्य और रम्यक वर्ष हैं ॥ २७ ॥

माल्यवांश्च यमकोटिपत्तनाद्रोमकाच्च किल गन्धमादनः । नीलशैलनिषधावधी च तावन्तरालमनयोरिलावृतम् ॥ २८ ॥

यमकोटिसे मालव और रोमक पत्तनसे गन्धमादन उत्तरमें नील और निषध पर्वत पर्य्यन्त उनके अन्तर्गत प्रदेशको इलावृत वर्ष कहते हैं ॥ २८ ॥

**माल्यवज्जलधिमध्यवर्त्ति यत्तु भद्रतुरगं जगु-
र्बुधाः । गन्धशैलजलराशिमध्यगं केतुमालकमि-
लाकलाविदः ॥ २९ ॥**

पण्डित लोग माल्यवान् पर्वत और समुद्रके अन्तर्वर्त्ती स्थानको भद्राश्व-वर्ष कहते हैं और गन्धमादन और समुद्र मध्यस्थित भूमिखण्डको केतुमाल वर्ष कहते हैं ॥ २९ ॥

**निषधनीलसुगन्धसुमाल्यकैरलमिलावृतमावृतमावभौ ।
अमरकेलिकुलायसमाकुलं रुचिरकाञ्चनचित्रमहीतलम् ३०**

निषध, नील, सुगन्ध और माल्य पर्व्वत द्वारा वेष्टित होकर इलावृतवर्ष शोभित है । काञ्चन द्वारा विचित्र रूपसे शोभित होकर वही महीतल देवताओंकी वासभूमि हुई है ॥ ३० ॥

**इह हि मेरुगिरिः किल मध्यगः कनकरत्नमय-
स्त्रिदशालयः । द्रुहिणजन्मकुपद्मजकर्णिकेति च
पुराणविदोऽमुमवर्णयन् ॥ ३१ ॥**

इसके मध्यगत देवताओंकी आवास भूमि कनक रत्नमय हेमगिरि है । पौराणिक पण्डितोंने कहा है कि—यही पृथिवीरूप पद्मके ब्रह्माका जन्मस्थान कर्णिका है ॥ ३१ ॥

**विष्कम्भशैलाः खलु मन्दरोऽस्य सुगंधशैलो
विपुलः सुपार्श्वः । तेषु क्रमात्संति च केतुवृक्षाः
कदम्बजम्बूवटपिप्पलाख्याः ॥ ३२ ॥**

इस पर्वतके मन्दर, सुगन्ध, विपुल और सुपार्श्व ये चार निष्कंभ शैल हैं, उनमें पताका रूपसे कदम्ब, जम्बू, वट और पिप्पल क्रमसे विद्यमान हैं ॥ ३२ ॥

**जम्बूफलामलगलद्रसतः प्रवृत्ता जम्बूनदी रस-
युता मृदभूत्सुवर्णम् । जाम्बूनदं हि तदतः सुर-
सिद्धसघाः शश्वत्पिबन्त्यमृतपानपराङ्मुखास्तम् ॥ ३३ ॥**

जम्बू फलोद्गत विमल रससे जम्बू नदीकी उत्पत्ति; जिसके रससे मट्टी सोना होजाती है । इसी कारण सोनेका नाम जाम्बूनद है । अमृत पानसे तृप्त होकर देवता और सिद्धगण उसी रसको पान करते हैं ॥ ३३ ॥

वनं तथा चैत्ररथं विचित्रं तेष्वप्सरो नंदननंदनञ्च । धृत्याह्वयं यद्धृतिकृत्सुराणां भ्राजिष्णुवैभ्राजमिति प्रसिद्धम् ॥ ३४ ॥

तथा विचित्र चित्र वन अप्सरोंको आनन्द करनेवाला ' नन्दन वन ' देशान्ति कर धृति या सुन्दर वैभ्राज्यारण्य शोभित है—ऐसा कहकर प्रसिद्ध हैं ॥ ३४ ॥

सरांस्यथैतेष्वरुणं च मानसं महाह्रदं श्वेतजलं यथा-क्रमम् । सरःसु रामा रमणश्रमालसाः सुरा रमंते जलकेलिलालसाः ॥ ३५ ॥

क्रमसे अरुण, मानस, महाह्रद और श्वेत जल नामक सरोवर सब हैं जिनमें रामा रमण श्रमालस देवतागण जलक्रीडाकी इच्छासे विचरण करते हैं ॥ ३५ ॥

सद्रत्नकाञ्चनमयं शिखरत्रयं च मेरौ मुरारिक-पुरारिपुराणि तेषु । तेषामधःशतमखज्वलनांत-कानां रक्षोऽम्बपानिलशशीशपुराणि चाष्टौ ॥ ३६ ॥

मेरु पर्व्वतपर सद्रत्न काञ्चनमय तीन शिखर हैं, वहां ब्रह्मा, विष्णु और महादेवकी तीन पुरी हैं । उनके नीचे इन्द्र, अग्नि, यम, रक्ष, वरुण, वायु, शशी, ईश, ये आठ पुरी वर्त्तमान है ॥ ३६ ॥

विष्णुपदी विष्णुपदात्पतिता मेरौ चतुर्धास्मात् । विष्कंभाचलमस्तकशस्तसरःसंगतागता वियता ३७॥

विष्णुपदी गंगा विष्णुपदसे मेरुपर होती हुई वहांसे ४ प्रकारकी होकर विष्कंभ पर्व्वतके ऊपर होकर चारों तालावोंमें जा मिली है ॥ ३७ ॥

सीताख्या भद्राश्वं सालकनंदा च भारतं वर्षम् । चक्षुश्च केतुमालं भद्राख्या चोत्तरान्कुरून्याता ॥३८॥

सीता नामक धारा भद्राश्ववर्षमें, अलकनन्दा नामक धारा भारतवर्षमें, चक्षु नामक धारा केतुमालवर्षमें और भद्रा नामक धारा उत्तरकुरुवर्षमें गमन करती है ॥ ३८ ॥

या कर्णिताभिलषिता दृष्टा स्पृष्टावगाहिता पीता। उक्ता स्मृता स्तुता वा पुनाति बहुधापि पापिनः पुरुषान् ॥ ३९ ॥

जिसके नामको कीर्तन, श्रवण और अभिलाष करनेसे, जिसको देखनेसे, स्पर्श, अवगाहन और पान करनेसे एवं जिसके स्मरण और स्तुति करनेसे अनेक प्रकारके पापी पुरुषोंकी पवित्रता होती है ॥ ३९ ॥

यां चलिते दलिताखिलबंधो गच्छति वल्गति तत्पितृसंघः॥ प्राप्ततटे विजितांतकदूतो यांति नरो निरयात्सुरलोकम् ॥ ४० ॥

जिसके पास जानेसे पितृ पुरुषगण निखिल बन्धन तोडकर शीघ्र मुक्त होते हैं, जिसके तटस्थ होनेसे यमदूतको जीतकर मनुष्य नरकसे सुरलोकको गमन करते हैं ॥ ४० ॥

ऐंद्रं कशेरुशकलं किल ताम्रपर्णमन्यद्गभास्तिमद्-तश्च कुमारिकाख्यम्। नागं च सौम्यमिह वारुणमंत्य-खण्डं गांधर्वसंज्ञमिति भारतवर्षमध्ये ॥ ४१ ॥

ऐन्द्र, कशेरु, शकल, ताम्रपर्ण, गभस्ति, कुमारिका, नाग, सौम्य, वारुण और गान्धर्व ये सब खण्ड भारतवर्षमें हैं ॥ ४१ ॥

वर्णव्यवस्थितिरिहैव कुमारिकाख्ये शेषेषु चांत्यज-जना निवसंति सर्वे । माहेंद्रशुक्तिमलयर्क्षकपारि-यात्राः सह्यः सविन्ध्य इह सप्त कुलाचलाख्याः ॥ ४२ ॥

कुमारिकाखण्डमें वर्णव्यवस्था है-अन्यान्य खण्डोंमें अन्त्यजलोग वास करते हैं। इसवर्षमें माहेन्द्र, शक्ति, मलय, ऋक्षक, पारिपार्श्व, सह्य, विन्ध्य ये सात पर्व्वत हैं ॥ ४२ ॥

भूर्लोकाख्यो दक्षिणे व्यक्षदेशात्तस्मात्सौम्योऽयं भुवः स्वश्च मेरुः। लभ्यः पुण्यैः खे महः स्याज्ज-नोऽतोऽनल्पानल्पैः स्वैस्तपः सत्यमन्त्यः ॥ ४३ ॥

निरक्षप्रदेशसे दक्षिणदिशामें भूर्लोक, वहांसे उत्तरकी ओर भुवर्लोक और मेरु (स्वर्लोक) है। स्वर्लोक तपलोक और सत्यलोक क्रमसे न्यूनाधिक्य पुण्यसे मिलते हैं ॥ ४३ ॥

**लंकापुरेऽर्कस्य यदोदयः स्यात्तदा दिनार्धं यम-
कोटिपुर्य्याम्। अधस्तदा सिद्धपुरेऽस्तकालः
स्याद्रोमके रात्रिदलं तदैव॥ ४४॥**

जिस समय लङ्कामें सूर्य्योदय होता है उस समय यमकोटि(पुरी)में मध्याह्न, सिद्धपुरीमें अस्तकाल और रोमक नगरमें आधीरात होती है॥ ४४॥

**यत्रोदितोऽर्कः किल तत्र पूर्वा तत्रापरा यत्र गतः
प्रतिष्ठाम्। तन्मत्स्यतोऽन्ये च ततोऽखिलानामुदक्-
स्थितो मेरुरिति प्रसिद्धम्॥ ४५॥**

जिस स्थानमें सूर्य्य उदित होता है वह पूर्वदिशा, जहां अस्त होता है वह पश्चिम दिशा है। उन्हीं २ बिन्दुओंसे मत्स्य (मछलीके आकारकी रेखा) रेखाद्वारा सब दिशाओंको दिखलावे, मेरु सबही प्रदेशसे उत्तर अवस्थित होगा, इस कारण मेरु उत्तरस्थ कहकर प्रसिद्ध है॥ ४५॥

**यथोज्जयिन्याः कुचतुर्थभागे प्राच्यां दिशि स्याद्य-
मकोटिरेव। ततश्च पश्चान्न भवेदवंती लंकेव तस्याः
ककुभि प्रतीच्याम्॥ ४६॥**

यद्यपि यमकोटी, उज्जयिनीसे पृथिवीके चतुर्थभागमें दूर, पूर्वदिशामें है तो भी वहांसे ठीक पश्चिमदिशामें अवन्ती नहीं है, किन्तु लंका ठीक पश्चिममें है॥ ४६॥

**तथैव सर्वत्र यतो हि यत्स्यात्प्राच्यां ततस्तन्न
भवेत्प्रतीच्याम्। निरक्षदेशादितरत्र तस्मात्प्रा-
चीप्रतीच्यौ च विचित्रसंस्थे॥ ४७॥**

उसी प्रकार सर्वत्र ही जिस स्थानसे जो हो वह स्थान पूर्वदिशामें है, शेषोक्त स्थानसे वह पश्चिम नहीं है। निरक्ष प्रदेशको छोड़कर अन्यत्र पूर्व-दिशा, और पश्चिम दिशाकी विचित्रता दीखती है॥ ४७॥

**निरक्षदेशे क्षितिमण्डलोपगौ ध्रुवौ नरः पश्यति
दक्षिणोत्तरौ। तदाश्रितं खे जलयन्त्रवत्तथा भ्रम-
द्भचक्रं निजमस्तकोपरि॥ ४८॥**

निरक्ष प्रदेशसे मनुष्य क्षितिजमण्डलोपग दक्षिणोत्तर दो ध्रुवोंको देखते हैं, वहांसे अपने मस्तकपर शून्यमें जलयन्त्रकी नाईं घूमते भचक्रको परिभ्रमण करते देखते हैं ॥ ४८ ॥

उदग्दिशं याति यथा यथा नरस्तथा तथा खान्नतमृक्षमण्डलम् । उदग्ध्रुवं पश्यति चोन्नतं क्षितेस्तदंतरे योजनजाः पलांशकाः ॥ ४९ ॥

जैसे २ मनुष्य उत्तरकी ओर जाता है, वैसे २ भूमण्डल वक्रभावसे दीखने लगता है एवं उत्तरध्रुव क्रमसे आकाशमार्गमें उन्नत होता जाता है । पृथिवीसे ध्रुवका अन्तरांशादि योजनगत है ॥ ४९ ॥

योजनसंख्या भांशैर्गुणिता स्वपरिधिहृता भवन्त्यंशाः । भूमौ कक्षायां वा भागेभ्यो योजनानि च व्यस्तम् ॥ ५० ॥

योजन संख्या ३६० द्वारा गुणन कर गुणनफलमें परिधिसे भाग देवे भागफल भूमि वा कक्षामें अंश होगा । विपरीत गणना करनेपर अंशादिसे योजनादि होगा ॥ ५० ॥

सौम्यं ध्रुवं मेरुगताः खमध्ये याम्यं च दैत्या निजमस्तकोर्ध्वे । सव्यापसव्यं भ्रमदृक्षचक्रं विलोकयन्ति क्षितिजप्रसक्तम् ॥ ५१ ॥

मेरुस्थित गण उत्तरध्रुवको और दैत्यगण दक्षिणध्रुवको अपने २ मस्तकपर देखते हैं । वे लोग बायें और दहिने क्रमसे नक्षत्रचक्रको क्षितिजरेखासे मिला हुआ भ्रमण करते देखते हैं ॥ ५१ ॥

प्रोक्तो योजनसंख्यया कुपरिधिः सप्तांगनन्दाब्धय- ४९६७ स्तद्व्यासः कुभुजंगसायकभुवः सिद्धांशकेनाधिकाः १५८१ $\frac{1}{२४}$। पृष्ठक्षेत्रफलं तथा युगगुणात्रिंशच्छराष्टाद्रयो ७८५३०३४ भूमेः कंदुकजालवत्कुपरिधिव्यासाहते प्रस्फुटम् ॥ ५२ ॥

कहा है कि, पृथिवीकी परिधि ४९६७ योजन, उसका व्यास १५८१$\frac{1}{२४}$

निरक्ष प्रदेशसे मनुष्य क्षितिजमण्डलोपग दक्षिणोत्तर दो ध्रुवोंको देखते हैं, वहांसे अपने मस्तकपर शून्यमें जलयन्त्रकी नाईं घूमते भचक्रको परिभ्रमण करते देखते हैं ॥ ४८ ॥

उदग्दिशं याति यथा यथा नरस्तथा तथा खान्नतमृक्षमण्डलम् । उदग्ध्रुवं पश्यति चोन्नतं क्षितेस्तदंतरे योजनजाः पलांशकाः ॥ ४९ ॥

जैसे २ मनुष्य उत्तरकी ओर जाता है, वैसे २ भूमण्डल वक्रभावसे दीखने लगता है एवं उत्तरध्रुव क्रमसे आकाशमार्गमें उन्नत होता जाता है । पृथिवीसे ध्रुवका अन्तरांशादि योजनगत है ॥ ४९ ॥

योजनसंख्या भांशैर्गुणिता स्वपरिधिहृता भवन्त्यंशाः । भूमौ कक्षायां वा भागेभ्यो योजनानि च व्यस्तम् ॥ ५० ॥

योजन संख्या ३६० द्वारा गुणन कर गुणनफलमें परिधिसे भाग देवे भागफल भूमि वा कक्षामें अंश होगा । विपरीत गणना करनेपर अंशादिसे योजनादि होगा ॥ ५० ॥

सौम्यं ध्रुवं मेरुगताः खमध्ये याम्यं च दैत्या निजमस्तकोर्ध्वे । सव्यापसव्यं भ्रमदृक्षचक्रं विलोकयन्ति क्षितिजप्रसक्तम् ॥ ५१ ॥

मेरुस्थित गण उत्तरध्रुवको और दैत्यगण दक्षिणध्रुवको अपने २ मस्तकपर देखते हैं । वे लोग बायें और दहिने क्रमसे नक्षत्रचक्रको क्षितिजरेखासे मिला हुआ भ्रमण करते देखते हैं ॥ ५१ ॥

प्रोक्तो योजनसंख्यया कुपरिधिः सप्ताङ्गनन्दाब्धय- ४९६७ स्तद्व्यासः कुभुजंगसायकभुवः सिद्धांशकेनाधिकाः १५८१$\frac{1}{24}$। पृष्ठक्षेत्रफलं तथा युगगुणत्रिंशच्छराष्टाद्रयो ७८५३०३४ भूमेः कंदुकजालवत्कुपरिधिव्यासाहते प्रस्फुटम् ॥ ५२ ॥

कहा है कि, पृथिवीकी परिधि ४९६७ योजन, उसका व्यास १५८१$\frac{1}{24}$

उसका पृष्ठ क्षेत्रफल ७८५३०३४ वर्ग योजन शेषोक्त कन्दुकगोलकी नाई पृथिवी परिधिको व्याससे गुणन करनेपर स्पष्ट होगा * ॥ ५२ ॥

दुष्टं कन्दुकपृष्ठजालवदिलागोले फलं जल्पितं
लल्लेनास्य शतांशकोऽपि न भवेद्यस्मात्फलं वास्तवम् ।
तत्प्रत्यक्षविरुद्धमुद्धृतमिदं नैवास्तु वा वास्तु वा
हे प्रौढा गणका विचारयत तन्मध्यस्थबुद्ध्या भृशम् ॥५३॥

कन्दुकके पृष्ठ जालके समान जो भूमिका परिमाण लल्ल (आचार्य्य) ने सिद्धान्त किया है (२८५६३३८५५७ योजन) उसके १०० अंशोंमें एक अंश भी सत्य नहीं है। यह प्रत्यक्ष विरुद्ध है,मैने जो कहा है वह सत्य है या नहीं सो विशेषविचारपूर्वक प्रवीण गणक लोग उसकी अत्यधिक भ्रान्ति निर्देश करें ॥ ५३ ॥

यत्परिध्यर्द्धविष्कंभं वृत्तं कृत्तं किलांशुकम् ।
तेनार्द्धञ्छाद्यते गोलः किञ्चिद्वस्त्रेऽवशिष्यते ॥ ५४ ॥

परिधिके आधेको व्यास कर वृत्तरचना करनेसे जो वस्त्र होता है उसके द्वारा गोलका आधा आच्छादित होकर कुछ अधिक रह जाता है× ॥ ५४ ॥

गोलक्षेत्रफलात्तस्माद्वस्त्रक्षेत्रफलं यतः ।
सार्द्धद्विगुणितासन्नं तावदेवापरे दले ॥ ५५ ॥

गोल क्षेत्रकी अपेक्षा वस्त्र क्षेत्रफल प्रायः २ $\frac{1}{2}$ गुण है, अपरार्द्ध भी उसी प्रकार है ॥ ५५ ॥

---

* विवरणः—आधुनिक पाश्चात्यगणितद्वारा स्थिर हुआ है कि, व्यासको ३,१४१५९२-६५३५८९७९३२३८४९ से गुणन करनेपर परिधि ज्ञात होती है। उक्त अङ्कको अङ्गरेजीमे पाई कहते है। Procuding of tne Royal Sociey ग्रन्थके Vol XXTII Page No 319 DeVoI XXII Page 45. देखनेसे जान पडेगा कि पाईकी प्रकृतसंख्या दशमलवके ५०० अक पर्य्यन्त गणित हुआ हैं। निश्चय है जो चतुर्गुणित पाईको व्यासार्द्ध वर्गसे गुणन करनेपर पृष्ठक्षेत्र होता है। यहांपर यह कहना है जो ' वेसेल ' नामक प्रसिद्ध गणितज्योतिषीने निर्देश किया है कि पृथिवीका व्यासार्द्ध ६३७७-३९७ और ६३५६७७९ मिटार या ३९–६२८ और ३९८९,५ माईल है। अतएव पृथिवी ठीक वर्तुलाकार नहीं है।

× सूक्ष्मगणनामें २,४६७४ गुण।

एवं पञ्चगुणात्क्षेत्रफलात्पृष्ठफलं खलु ।
नाधिकं जायते तेन परिधिघ्नं कुतः कृतम् ॥ ५६ ॥

इसी प्रकार पञ्चगुण क्षेत्रफलसे पृष्ठ फल जब अधिक नहीं तो किस प्रकार उन्होंने (लल्लने) परिधिद्वारा गुणन करनेकी व्यवस्था की है ॥ ५६ ॥

वृत्तक्षेत्रफलं यस्मात्परिधिघ्नं न युक्तिमत् ।
दुष्टत्वाद्गणितस्यास्य दुष्टं भूपृष्ठजं फलम् ॥ ५७ ॥

वृत्तक्षेत्रफलको परिधि द्वारा गुणन करना युक्ति विरुद्ध है और दुष्ट कहनेसे भूपृष्ठजफल दोष मुक्त Full af mistakes होता है ॥ ५७ ॥

गोलस्य परिधिः कल्प्यो वेदघ्नज्यामितेर्मितः ।
मुखबुध्नगरेखाभिर्यद्वदामलके स्थिताः ॥ ५८ ॥
दृश्यन्ते वप्रकास्तद्वत्प्रागुक्तपरिधेर्मितान् ।
ऊर्ध्वाधः कृतरेखाभिर्गोले वप्रान्प्रकल्पयेत ॥ ५९ ॥

चतुर्गुणित ज्यापरिमित संख्याको (९६) गोलकी परिधि कल्पना कर अधऊर्ध्व मुखबुध्न रेखाद्वारा आमलककी नाईं विभक्त करनेवाली वप्र रचना करे ॥ ५८ ॥ ५९ ॥

तत्रैकवप्रकक्षेत्रफलं खण्डैः प्रसाध्यते ।
सर्वज्यैक्यं त्रिभज्यार्धहीनं त्रिज्यार्धभाजितम् ॥ ६० ॥

उसके एक वप्रके क्षेत्रफल खण्डोंसे स्थिर कर साधन करे । सब ज्या योग फल त्रिज्यार्द्ध वियोगकर त्रिज्यार्द्ध द्वारा भाग करनेसे वह अवगत होगा ॥६०॥

एवं वप्रफलं तत्स्याद्गोलव्याससमं यतः ।
परिधिव्यासघातोऽतो गोलपृष्ठफलं स्मृतम् ॥ ६१ ॥

यह वप्रफल गोलव्यासकी बराबर होता है ऐसा मानकर परिधि व्यास-द्वारा गुणन करनेसे गोलपृष्ठ होता है ॥ ६१ ॥

वृद्धिर्विधेरह्नि भुवः समन्तात्स्याद्योजनं भूभवभूनपूर्वैः ।
ब्राह्मे लये योजनमात्रवृद्धेर्नाशो भुवः प्राकृतिकेऽखि-लायाः ॥ ६२ ॥

ब्रह्माके एक दिनमें पृथिवीस्थ द्रव्योंके द्वारा एक योजन सब ओर वृद्धि होती है, ब्राह्म लयमें वर्द्धित योजन नाश होता है अन्तमें सब नाश होता है ॥ ६२ ॥

दिने दिने यन्म्रियते हि भूतैर्दैनन्दिनं तं प्रलयं वदन्ति।
ब्राह्मं लयं ब्रह्मदिनान्तकाले भूतानि यद्ब्रह्मतनुं विशन्ति ६३

काल वशसे जो सब प्राणियोंकी मृत्यु होती है, उसे दैनिक प्रलय कहते हैं। ब्राह्मलय ब्रह्माके दिनके अन्तमें होता है, उस समय सब प्राणी ब्रह्माके शरीरमें प्रवेश कर जाते हैं अर्थात् कारणरूप रहते हैं ॥ ६३ ॥

ब्रह्मात्यये यत्प्रकृतिं प्रयान्ति सर्वाण्यतः प्राकृतिकं कृतीन्द्राः। लीनान्यतः कर्मपुटान्तरत्वात्पृथक् क्रियन्ते प्रकृतेर्विकारैः ॥ ६४ ॥

ब्राह्मलयमें जब सब प्राणी प्रकृतिमें लीन होते हैं इसलिये पण्डितलोग तब उसे प्राकृतिक लय कहते है। इसी प्रकार लीन होकर कर्मपुटान्तर वशसे प्रकृतिके विकारसे पुनः सृष्टि होती है ॥ ६४ ॥

ज्ञानाग्निदग्धाखिलपुण्यपापा मनः समाधाय हरौ परेशे। यद्योगिनो यान्त्यनिवृत्तिमस्मादात्यन्तिकं चेति लयश्चतुर्धा ॥ ६५ ॥

ज्ञानरूप अग्निद्वारा निखिल पुण्य और पाप जल जानेपर परेश ईश्वरमें मन स्थापन करते हुए योगी लोग अनिवृत्ति अवस्थालाभ करते है। इसलिये उस लयको आत्यन्तिक लय कहते हैं। इस प्रकार लय ४ प्रकारका है ॥ ६५ ॥

भूभूधरात्रिदशदानवमानवाद्या ये याश्च धिष्णगगनेचरचक्रकक्षाः। लोकव्यवस्थितिरुपर्युपरि प्रदिष्टा ब्रह्माण्डभाण्डजठरे तदिदं समस्तम् ॥ ६६ ॥

पृथिवी, पर्वत, देवता, दानव, मानव सव आकाशस्थ निर्दिष्ट चरचक्र कक्षा सब एवं ऊपर २ के लोक व्यवस्था सब ही ब्रह्माण्डभाण्डके भीतर है ॥ ६६ ॥

कोटिघ्नैर्नखनन्दषट्कनखभूभूभृद्भुजंगेन्दुभिः १८७१२०६९२००००००० ज्योतिःशास्त्रविदो वदन्ति नभसः कक्षामिमां योजनैः। तद्ब्रह्माण्डकटाहसंपुटतटे केचिज्जगुर्वेष्टनं केचित्प्रोचुरदृश्यदृश्यकगिरिं पौराणिकाः सूरयः ॥ ६७ ॥

ज्योतिषशास्त्रवित् पण्डितलोग कहते हैं कि आकाश कक्षायोजन संख्या १८-७१२०६९२०००००००० है उसको कोई २ ब्रह्माण्डकटाहके सम्पुटस्थ वेष्टन समझते हैं । एवं कोई २ पौराणिक पण्डित कहते हैं कि लोकालोकपर्वतका वेष्टनमात्र है ॥ ६७ ॥

करतलकलितामलकवदमलं सकलं विदन्ति ये गोलम् ।
दिनकरकरनिकरनिहततमसो नभसःस परिधिरुदितस्तैः ६८
ब्रह्माण्डमेतन्मितमस्तु नो वा कल्पे ग्रहः क्रामति योजनानि ।
यावन्ति पूर्वैरिह तत्प्रमाणं प्रोक्तं खकक्षाख्यमिदं मतं नः६९॥

इति गोलाध्याये भुवनकोशः ।

जो लोग करतलगत आमलककी नाईं गोलविद्याको जानते हैं वे कहते हैं कि सूर्य्य द्वारा दूरीकृत शून्यस्थित अन्धकारराशिकी सीमाकी परिधिमात्र है ॥ ६८ ॥ ६९ ॥

इति भुवनकोषः समाप्तः ।

भूवायुरावह इह प्रवहस्तदूर्ध्वः स्यादुद्वहस्तदनु संवह-
संज्ञकश्च । अन्यस्ततोऽपि सुवहः परिपूर्वकोऽस्माद्बाह्यः
परावह इमे पवनाः प्रसिद्धाः ॥ १ ॥

भू, वायु, आवाह, उसके ऊपर प्रवह, उसके ऊपर उद्वह, संवह, सुवह और परावह ये सात प्रकारके पवन प्रसिद्ध हैं ॥ १ ॥

भूमेर्बहिर्द्वादशयोजनानि भूवायुरत्राम्बुदविद्युदाद्यम् ।
तदूर्ध्वगो यः प्रवहः स नित्यं प्रत्यग्गतिस्तस्य तु मध्य-
संस्था ॥ २ ॥

पृथिवीसे १२ योजन पर्य्यन्त भूवायु उसमें मेघ और बिजली आदि हैं, उसके ऊपर प्रवह नित्य पश्चिमकी ओर मध्यगतिसे चलता है ॥ २ ॥

नक्षत्रकक्षाखचरैः समेतो यस्मादतस्तेन समाहतोऽयम् ।
भपञ्जरः खेचरचक्रयुक्तो भ्रमत्यजस्रं प्रवहानिलेन ॥ ३ ॥

यह भपञ्जर ग्रहसहित नक्षत्र कक्षा और खेचर चक्रयुक्त होकर प्रवह वायु द्वारा चालित होता हुआ निरन्तर भ्रमण करता है ॥ ३ ॥

यांतो भचक्रे लघुपूर्वगत्या खेटास्तु तस्यापरशीघ्रगत्या ।
कुलालचक्रभ्रमिवामगत्या यान्तो न कीटा इव भांति यान्तः४

कुम्हारके चाकमें स्थित कीट यादि अपर दिशामें गमन करे तथापि चक्रके भ्रमणके कारण नहीं समझ सकता, उसी प्रकार भचक्रकी शीघ्र गतिके कारण ग्रहोंकी अल्प पूर्व गति द्वारा गमन नहीं प्रतीत होती है ॥ ४ ॥

समं भसूर्य्यावुदितौ किलाक्ष्यां षष्ट्या घटीनामुदितं पुनर्भम् ।
रविस्ततः स्वोदयभुक्तिघातात्खाभ्राष्टभू १८०० लब्धसमा-
सुभिश्च ॥ ५ ॥

एकसमय सूर्य्य और नक्षत्र उदित होनेपर दूसरे दिन ६० दण्ड (नाक्षत्रिक) परे पुनः नक्षत्र उदय होगा । किन्तु सूर्य्यके स्व उदय प्राणको भुक्तिद्वारा गुणन कर गुणनफलमें १८०० का भाग करे, भागफल प्राण (नाड़ी) के पीछे उदय होगा ॥ ५ ॥

समागतासुसंयुता रवेस्तु षष्टिनाडिकाः ।
स्फुटं द्युरात्रमुद्गमाद् द्युभुक्तितश्च तच्चलम् ॥ ६ ॥

उक्त भागलब्ध प्राण ६० दण्डमें जोड़नेसे सूर्य्यका स्पष्ट अहोरात्र होगा, कारण यह है जो उसकी दैनिक भुक्ति प्रतिदिन भिन्न २ होती है ॥ ६ ॥

षष्ट्या घटीनां भदिनं सदाक्ष्यां तद्भुक्तितुल्यासुयुतं खरांशोः । स्यान्मध्यमं सावनमेवमब्दे तत्संख्यका भभ्रमतो निरेका ॥ ७ ॥

सर्व्वदा ६० दण्डका नाक्षत्रिक अहोरात्र, रविभुक्ति तुल्य प्राण जोडनेसे मध्यम सावन दिन (Mean Civil day) होगा । वर्षमें भभ्रम अपेक्षा इस कारण सौरदिनकी संख्या एक कम होती है ॥ ७ ॥

पञ्चांगरामास्तिथयः खरामाः सार्द्धद्विदस्राः कुदिनाद्यमब्दे ।
अस्यार्कमासोऽर्कलवःप्रदिष्टस्त्रिंशद्दिनःसावनमास एव ॥८॥

सावनदिनके अनुसार एक वर्षमें ३६५ । दिन १५ । ३० । २२ इसके १२ वें भागमें सावन मास और उसके ३० वें भागमें सावन दिन होता है ॥ ८ ॥

कालेन येनैति पुनः शशीनं क्रामन्भचक्रं विवरेण गत्योः । मासः स चान्द्रोऽङ्कयमाः कुरामाः पूर्णेषवः- २९।३१।५० स्तत्कुदिनप्रमाणम् ॥ ९ ॥

जिसकालमें चन्द्रमा समस्त चक्र परिभ्रमण करके सूर्य्यके अन्तर्गत होता है उसको चन्द्रमास कहते हैं वह सावनदिनके अनुसार दिन २९ । ३१ । ५० होता है ॥ ९ ॥

चान्द्रोनसौरेण हतात्तु चान्द्रादवाप्तसौरैर्दशनैर्दलाढ्यैः ३२ । १६ ॥ मासैर्भवेच्चान्द्रमसोऽधिमासः कल्पेऽपि कल्प्या अनुपाततोऽतः ॥ १० ॥

चान्द्रमास और सौरमासके द्वारा चान्द्रमासको भाग देनेसे भागफल अधिमास होता है । वह सौर ३२ $\frac{1}{2}$ मासके अन्तर होता है, अनुपातद्वारा अल्पगत अधिमास संख्याका गणित होता है ॥ १० ॥

सौरान्मासादैन्दवः स्याल्लघीयान्यस्मात्तस्मात्संख्यया तेऽधिकाः स्युः । चान्द्राः कल्पे सौरचान्द्रान्तरे ये मासास्तज्ज्ञैस्तेऽधिमासाः प्रदिष्टाः ॥ ११ ॥

सौरमाससे चान्द्रमास अल्पक्षणस्थायी होता है इस कारण चान्द्रमासकी संख्या अधिक होती है। कल्पमें सौर और चान्द्रमासके अन्तरसंख्या संख्याको पण्डित लोग चन्द्राधिमास कहते हैं ॥ ११ ॥

शशांकमासोनितसावनेन ०।२८।१० त्रिंशद्धृता लब्धदिनैस्तु चान्द्रैः । रुद्रांशकोनोऽब्धिरसैः ६३।५४। २३ क्षयाहः स्यात्सावनोऽतश्च युगेऽनुपातात् ॥ १२ ॥

सावनमाससे चान्द्रमास समान घटानेपर जो बचे उसको ३० से भाग देवे भागफल चान्द्रदिन संख्या होगी । सौर अवमदिन ६३ $\frac{10}{11}$ दिनमें संघटित होता है । इससे युगगत (अवम) सावनसंख्या निर्णीत हो जाती है ॥ १२ ॥

सौरेभ्यः साधितास्ते चेदधिमासास्तदैन्दवाः । चेच्चान्द्रेभ्यस्तदा सौरास्तच्छेषं तद्वशात्तथा ॥ १३ ॥

सौरमाससे अधिमास साधित होनेपर चान्द्र अधिमास होगा चान्द्रसे होनेपर सौर अधिमास होगा । शेष सब उसीप्रकार रहेगा ॥ १३ ॥

सावनान्यवमानि स्युश्चान्द्रेभ्यः साधितानि चेत ।
सावनेभ्यस्तु चान्द्राणि तच्छेषं तद्वशात्तथा ॥ १४ ॥

अवम सब सावन होगा यदि चान्द्रदिनसे साधित होता है, सावनसे साधित होनेपर चान्द्र होगा। इसीप्रकार उनके अवशिष्ट भी होंगे ॥ १४ ॥

अहर्गणस्यानयनेऽर्कमासाश्चैत्रादिचान्द्रैर्गणकान्विताः किम् । कुतोऽधिमासावमशेषकं च त्यक्तं यतः सावयवोऽनुपातः ॥ १५ ॥

अहर्गण लानेमें चैत्रादि सौरमासका योग क्यो किया जाता ? या अधिमास और अवम (क्षयतिथि) शेष क्यों छोड़े जाते जब अनुपात सब अवयवके सहित साधित होता है ?॥ १५ ॥

दर्शावधिश्चान्द्रमसो हि मासः सौरस्तु संक्रान्त्यवधिर्यतोऽतः । दर्शाग्रतः संक्रमकालतः प्राक् सदैव तिष्ठत्यधिमासशेषम् ॥ १६ ॥

दश (अमा) पर्य्यन्त चान्द्रमास और संक्रान्तिपर्य्यन्त सौरमास होता है। दर्शके पीछे संक्रमण कालके पहिले सदा अधिमास शेप रहता है ? ॥१६॥

दर्शान्ततो याततिथिप्रमाणैः सौरैस्तु सौरा दिवसाः समेताः । यतोऽधिशेषोत्थदिनाधिकास्ते त्यक्तं तदस्मादधिमासशेषम् ॥ १७ ॥

दर्शान्त समयसे गततिथि परिमाणानुसार सौरदिवस ज्ञानके निमित्त सौर दिवस जोड़ा जाता है कहनेसे शेपोत्थ दिन उसमें हैं जानकर अधिमास शेष छोड़ा जाता है ॥ १७ ॥

तिथ्यन्तसूर्य्योदययोस्तु मध्ये सदैव तिष्ठत्यवमावशेषम् । त्यक्तेन तेनोदयकालिकः स्यात् तिथ्यन्तकाले द्युगणोऽन्यथातः ॥ १८ ॥

तिथ्यन्त और सूर्य्योदयके मध्यमें सदा अवशेष है उसके छोड़ देनेसे उदयकालिक अहर्गण होता है नहीं तो तिथ्यन्तकालमें अहर्गण होगा ॥१८॥

अहर्गणो मध्यमसावनेन कृतश्चलत्वात्स्फुटसावनस्य ।
तदुत्थखेटा उदयान्तराख्यकर्मोद्भवेनोनयुताःफलेन ॥१९॥

स्पष्ट सावनकी चलतासे मध्य सावन द्वारा अहर्गणकृत होता है-तत्तुल्य ग्रहमें उदयान्तर फल संस्कार करनेपर लङ्कोदयमें होगा ॥ १९ ॥

लंकोदये स्युर्न कृतास्तथाद्यैर्यतोऽन्तरं तच्चलमल्पकञ्च । मध्यार्कभुक्ता असवो निरक्षे ये ये च मध्यार्ककलासमानाः २० तदन्तरं यत्स्फुटमध्ययोस्तद्द्युपिण्डयोःस्याद्विवरं गतिघ्नम् । हृतं द्युरात्रासुभिरात्तलिप्ताहीना ग्रहाश्चेदसवोऽल्पकाःस्युः२१ तदन्यथाढ्यास्तु निजोदयैश्चेद्गृहीतासु पूर्वं विहितं तदानीम् । कृतं तथा स्याच्चरकर्ममिश्रं कर्म ग्रहाणामुदयान्तराख्यम् २२

आदि ज्योतिषी लोग उस चल (Deffirence) को थोड़ा समझकर घटाते नहीं, १९½ मध्य सूर्य्यकी भुक्तिसे निरक्षगत प्राणसे मध्यरवि कलासमान प्राण अन्तरही स्पष्ट और मध्य अहर्गणका अन्तर है । उसी अन्तरको गति-द्वारा गुणनकर दिवारात्रद्वारा भाग करके कलादिसे यदि प्राण न्यून हो तो घटावे नहीं तो जोड़े । यदि स्वीय उदयगत प्राण गृहीत होता है तो चर मिश्र कर्म इस उदयान्तर कर्ममें किया गया है १९½ ॥ २०-२२ ॥

येऽनेन लंकोदयकालिकास्ते देशान्तरेण स्वपुरोदये स्युः । देशान्तरं प्रागपरं तथान्यद्याम्योत्तरं तच्चरसंज्ञ-मुक्तम् ॥ २३ ॥

लंकोदय कालिक ग्रहोंमें स्वदेशीय देशान्तर संस्कार करनेसे स्वदेशीय ग्रह होता है । देशान्तर दो प्रकारका होता है-प्रथम प्राक् और पश्चिम, द्वितीय उत्तर और दक्षिण अर्थात् चर ॥ २३ ॥

यल्लंकोज्जयिनीपुरोपरि कुरुक्षेत्रादिदेशान्स्पृश-न्सूत्रं मेरुगतं बुधैर्निगदिता सा मध्यरेखा भुवः । आदौ प्रागुदयोऽपरत्र विषये पश्चाद्धि रेखोदया-त्स्यात्तस्मात्क्रियते तदन्तरभवं खेटेष्वृणं स्वं फलम् ॥२४॥

जो रेखा लंका, उज्जयिनी, कुरुक्षेत्रादि देशस्पर्श करके मेरुतक गई है उसको पण्डित लोग भूमध्यरेखा (Priem Meredean) कहते हैं । मध्य-रेखाके पूर्व्व देशमें सूर्य्य पहिले और पश्चिमस्थ देशमें पीछे उदित होता है । इस कारण ग्रहमें देशभेदसे ऋण या धन घटाना×जोडना संस्कार किया जाता है ॥ २४ ॥

स्वदेशमेर्वंतरयोजनैर्यल्लम्बांशजैर्मेरुगिरेः समंतात्। वृत्तं स्फुटो भूपरिधिर्यतः स्यात् त्रिज्याहतो लम्बगुणः कृतोऽस्मात् ॥ २९ ॥

इति गोलाध्याये मध्यगतिवासना। अत्र ग्रंथसंख्या ॥ १७९ ॥

मेरु पर्व्वतके चारों ओर वृत्त सब हैं कहनेसे स्वदेश और मेरुके अन्तर योजन लम्बांशसे निर्णय करके पृथिवीके परिधिको गुणन कर त्रिज्याद्वारा भाग करनेपर स्फुट परिधि होगी ॥ २९ ॥

इति मध्यगति–वासना समाप्ता।

पटो यथा तंतुभिरूर्ध्वतिर्यग्रूपैर्निबद्धोऽत्र तथैव गोलः। दोः कोटिजीवाभिरमुं प्रवक्तुं ज्योत्पत्तिमेव प्रथमं प्रवक्ष्ये ॥ १ ॥

पट (वस्त्र) जिस प्रकार ऊर्ध्व और तिर्यक् तन्तु सबके द्वारा संघटित होता है। उसी प्रकार गोलभी भुज और कोटि ज्याद्वारा निबद्ध है। इसलिये गोल कहनेके लिये पहिले ज्योत्पत्तिके विषयको कहूंगा ॥ १ ॥

इष्टा त्रिज्या सा श्रुतिर्दोर्भुजज्या कोटिज्या तद्वर्गविश्लेषमूलम्। दोः कोट्यंशानां क्रमज्ये पृथक् ते त्रिज्याशुद्धे कोटिदोरुत्क्रमज्ये ॥ २ ॥

इष्ट त्रिज्याको कर्ण कल्पित करनेपर भुजज्या बाहु होता है–त्रिज्या वर्गसे भुजज्या वर्ग घटा करके मूल करनेपर कोटीज्या होती है। क्रमशः भुज और कोट्यंश जातज्या त्रिज्यासे वियोग करनेपर कोटि और भुजकी उत्क्रमज्या होगी ॥ २ ॥

ज्याचापमध्ये खलु बाणरूपा स्यादुत्क्रमज्या त्रिभमौर्विकायाः। वर्गार्द्धमूलं शरवेदभागजीवा ततः कोटिगुणोऽपि तावान् ॥ ३ ॥

ज्या और धनुके मध्यगत वाणकी नाई–उत्क्रमज्या होती है। त्रिज्यावर्गार्द्ध मूल ४५ अंशकी ज्या, वही उसकी कोटी है ॥ ३ ॥

विभज्यकार्धं खगुणांशजीवा तत्कोटिजीवा खरसांशकानाम्। क्रमोत्क्रमज्याकृतियोगमूलाद्दलं तदर्धांशकशिञ्जिनी स्यात् ॥ ४ ॥

[४५ अंशकी ज्या और कोटी=७०७१०६८ त्रिज्या=१] ३० अंशकी ज्यार्द्ध (१७१८. ८७३३ ५३९) वही ६० की कोटि ज्या है । उत्क्रमज्या वर्ग और ज्या वर्ग योगका मूलार्द्ध अंशके अर्द्धककी ज्या है ॥ ४ ॥

त्रिज्योत्क्रमज्यानिहतेर्दलस्य मूलं तदर्धांशकशिञ्जिनी वा । तस्याः पुनस्तद्दलभागकानां कोटेश्च कोट्यंश-दलस्य चैवम् ॥ ५ ॥

अथवा त्रिज्याको क्रमज्या द्वारा गुणन कर–उसका आधा कर मूल निकालनेपर धन्वार्द्धकी ज्या होगी और उसमें आधेकी ज्या कर क्रमशः उस आधेकी ज्या निर्णीत होगी ॥ ५ ॥

एवं त्रिषट्सूर्यजिनादिसंख्या अभीष्टजीवाः सुधिया विधेयाः । त्रिज्योत्थवृत्ते भगणांकिते वा ग्राह्या अभीष्टा विगणय्य जीवाः ॥ ६ ॥

इस प्रकार गणक ३, ६, १२, २४ प्रभृति भागकी ज्या निर्धारण करसकते हैं अथवा त्रिज्याजात वृत्तमें भगणांककर ज्या संख्या परिमाण करनेपर जाना जा सकता है ॥ ६ ॥

भूमेर्मध्ये खलु भवलयस्यापि मध्यं यतः स्याद्यस्मिन्वृत्ते भ्रमति खचरो नास्य मध्यं कुमध्ये । भूस्थो द्रष्टा नहि भवलये मध्यतुल्यं प्रपश्येत्तस्मात्तज्ज्ञैः क्रियत इह तद्दोः फलं मध्यखेटे ॥ ७ ॥

पृथिवीका मध्यभाग नक्षत्रकक्षाका मध्य (केन्द्र) एकही है, किन्तु जिस वृत्तमें ग्रहगण भ्रमण करते हैं–उसका मध्य पृथिवीमें एक नही है । इसकारण भूपृष्ठस्थ मनुष्यकर्तृक मध्य तुल्यस्थानमें नक्षत्रकक्षामें ग्रहगण नही दीखते इसकारण मध्यग्रहमें पण्डितलोग भुजफल संस्कार करते हैं ॥ ७ ॥

पूर्वापरायतायां तद्भित्तावुत्तरपार्श्वके ।
दर्शयेच्छिष्यबोधाथ लिखित्वा छेद्यकं सुधीः ॥ ८ ॥

पूर्व्वापरगतभित्तिकी उत्तर ओर शिष्योंके समझानेके लिये गणक एक छेद्यक लिखे ॥ ८ ॥

दिव्यं ज्ञानमतीन्द्रियं तदृषिभिर्ब्राह्मं वसिष्ठादिभिः
पारम्पर्य्यवशाद्रहस्यमवनीं नीतं प्रकाश्यं ततः ।

नैतद्द्वेषिकृतघ्नदुर्जनदुराचाराचिरावासिनां
स्यादायुःसुकृतक्षयो मुनिकृतां सीमामिमामुज्झतः ॥ ९ ॥

यह दिव्य इन्द्रियातीत ज्ञान जो ब्रह्मासे वासिष्ठादि ऋषियोंने परम्परा वा क्रमगत भूमण्डलमें लाकर प्रकाशित किया है । इसको कभी द्वेषी, कृतघ्न, दुर्जन, दुराचार, थोडी आयुवाले शिष्यको नहीं देना चाहिये । नही तो मुनिकृत निषेधका उल्लंघन जनित यशका नाश और आयुक्षय होगी ॥ ९ ॥

त्रिभज्यकासम्मितकर्कटेन कक्षाख्यवृत्तं प्रथमं विलिख्य ।
तन्मध्यतो मध्यमखेटभुक्तितिथ्यंशमानेन महीं सुवृत्ताम् १०

त्रिज्याकी बराबर कर्कट (a pair of Compasses) से कक्षनामक वृत्त पहिले लिखकर उसके मध्यभागमें १५ भाग परिमित महीवृत्त रचना करे ॥ १० ॥

कक्षाख्यवृत्ते भगणांकितेऽत्र दत्त्वोच्चखेटौ क्रियतोऽथ रेखा । कुमध्यतुङ्गोपरिगा विधेया तिर्य्यक् ततोऽन्या सुधिया कुमध्ये ॥ ११ ॥

कक्षावृत्तमें अंश सब अंकितकर उच्चस्थान और ग्रहस्थान निर्णय करे । इसके पीछे पण्डित भूमध्य और उच्चगत एक, उच्च रेखा और तिर्यक् भावसे अन्य एक रेखा निर्णय करे ॥ ११ ॥

उच्चोन्मुखीमन्त्यफलज्यकां च दत्त्वा कुमध्याद्विलिखेत्तदग्रे । त्रिभज्ययैव प्रतिमण्डलाख्यं सैवोच्चरेखा त्वपरात्र तिर्य्यक् ॥ १२ ॥

इस रेखामें पृथिवीसे अन्य फलज्याके अनुसार उच्चकी ओर त्रिज्या परिमाणसे एक प्रतिमण्डल रचना करे । इसीवृत्तमे वह उच्चरेखा वर्त्तमान होगी । किन्तु तिर्यक् रेखा एक दूसरी है ॥ १२ ॥

तुङ्गोर्ध्वरेखा खलु यत्र लग्ना तत्रोच्चमस्मिन्प्रतिमण्डलेऽपि ।
ततो विलोमं खलु तुङ्गभागैर्मेषादिरस्मात्खचरोऽनुलोमम् १३

उच्चोर्ध्वरेखाने जिस स्थानमें प्रतिमण्डलको काटा है, उसी स्थानमें प्रतिमण्डलस्थ उच्च स्थान है उसी स्थानसे उच्चांश संख्यामें विलोम गणना कर मेषादि निर्णयकर प्रतिमण्डलमें ग्रहोंका स्थानादि निर्णय करे ॥ १३ ॥

देयस्तदुच्चान्तरमत्र केन्द्रं दोर्ज्योच्चरेखाखगयोश्च मध्ये । तिर्यक्स्थरेखाखगयोस्तु कोटिः सोर्ध्वाधरा बाहुगुणस्तु तिर्यक्॥

उच्च और ग्रहके स्थानके अन्तरका नाम केन्द्र है । उच्चरेखा और ग्रहके मध्यगत रेखाको भुजज्या और तिर्यक् रेखा और ग्रहके मध्यगत रेखाको कोटिज्या कहते है । कोटिज्या ऊर्ध्वमुखी बाहु तिर्यक् है ॥ १४ ॥

मध्यस्थरेखे किल वृत्तयोर्ये तदन्तरालेऽन्त्यफलस्य जीवा । तदूर्ध्वतः कोटिगुणो मृगादौ कर्क्यादिकेन्द्रे तदधो यतः स्यात् ॥ १५ ॥

वृत्तके मध्यस्थ रेखाके (तिर्यग्गामी) अन्तर अन्त्य फलज्या परिमाणानुसार मकरादि केन्द्रमें ऊपरमें कर्कादिकेन्द्रमें नीचे रहती है ॥ १५ ॥

अतस्तदैक्यान्तरमत्र कोटिर्दोर्ज्या भुजस्तत्कृतियोगमूलम् । कर्णः कुमध्यप्रतिमण्डलस्थखेटान्तरे स्पष्टखगो हि दृश्यः ॥ १६ ॥

इस कारण इन दोनोंका (अन्त्य फल ज्या और कोटिज्या) योगफल किंवा अन्तर फल स्पष्ट कोटिज्या होगी । भुजज्या वर्ग और कोटि (स्पष्ट) ज्या वर्ग योगमूलसे कर्ण होता है । यही पृथिवी मध्य और प्रतिमण्डलस्थ ग्रहका अन्तर स्पष्टग्रह उस रेखामें दृष्ट होगा ॥ १६ ॥

कक्षाख्यवृत्ते श्रुतिसूत्रसक्ते फलं च मध्यस्फुटखेटमध्ये । मध्येऽग्रगे स्पष्टखगाद्दणं तत्पृष्ठस्थिते स्वं क्रियते ततश्च १७॥

कक्षावृत्तमें कर्णसूत्रगत फलमें संस्कार करनेपर स्पष्ट ग्रह होता है । मध्यग्रहगत होनेपर स्पष्ट ग्रहसे घटावे और पश्चात् होनेपर जोडना चाहिये ॥१७॥

मध्यो हि मन्दप्रतिमण्डले खे मन्दस्फुटो द्राक्प्रतिमण्डले च । भ्रमत्यतश्चञ्चलकर्मणीह मन्दस्फुटो मध्यखगः प्रकल्प्यः ॥ १८॥

मन्द प्रतिमण्डलमें मध्यग्रह भ्रमण करता है, शीघ्र प्रतिमण्डलमें मन्दस्पष्ट ग्रह भ्रमण करता है, इस कारण मन्दस्पष्ट शीघ्र कर्ममें मध्य नामसे ग्रहण होता है ॥ १८ ॥

भ्रमन् ग्रहः खे प्रतिमण्डले नृभिः स यत्र कक्षावलये विलोक्यते । स्फुटो हि तत्रास्य फलोपपत्तये प्रकल्पितुं तुंगमिहाद्यसूरिभिः ॥ १९ ॥

ग्रह सब अपने २ प्रतिमण्डलमें भ्रमण करते हैं, कक्षावलयमें जिस स्थानमें मनुष्यद्वारा दीख पडते हैं--उसको 'स्फुट' कहते है । पण्डित लोगोंने उसी फल लाभके लिये तुङ्गादि कल्पना की है ॥ १९ ॥

यः स्यात्प्रदेशः प्रतिमण्डलस्य दूरे भुवस्तस्य कृतोच्च-संज्ञा । सोऽपि प्रदेशश्चलतीति तस्मात्प्रकल्पिता तुंग-गतिर्गतिज्ञैः ॥ २० ॥

प्रतिमण्डलके जिस स्थानमें पृथिवीसे अतिशय दूरमें अवस्थित है--उसको उच्च कहते हैं । वह स्थानभी भ्रमण करता है । इस लिये पण्डितोंने उच्चगति स्थिर की है ॥ २० ॥

उच्चाद्भषट्कांतरितं च नीचं मध्यः स्वनीचोच्चसमो यदा स्यात् । कक्षास्थमध्योपरि कर्णसूत्रपातात्स्फुटो मध्य-समस्तदानीम् ॥ २१ ॥

उच्चस्थानसे छः राशि अन्तरमें नीचस्थान अवस्थित है--ग्रहमध्य जिस समय स्वनीच किम्वा उच्चतुल्य होता है, अर्थात् कक्षास्थ मध्यके ऊपर कर्ण-सूत्र पतित होता है--उस समय स्फुट और मध्य समान होजाता है ॥ २१ ॥

उच्चस्थितो व्योमचरः सुदूरे नीचस्थितः स्यान्निकटे धरित्र्याः । अतोऽणुबिम्बः पृथुलश्च भाति भानोस्तथासन्नसुदूरवर्ती॥२२॥

उच्चास्थित होनेपर वहुत दूरमें और नीचस्थित होनेपर पृथिवीके निकटमें रहनेसे ग्रहविम्ब सूक्ष्म वा पुष्ट देखाजाता है । सूर्य्यका भी इसी प्रकार निकटवर्त्ती होनेपर उसप्रकार प्रतीत होता है ॥ २२ ॥

उक्ता मयैषा प्रतिवृत्तभंग्या युक्तिः पृथक् श्रोतुरसंभ्र-मार्थम् । स्पष्टीकृतेस्तां पुनरन्यथाहं नीचोच्चवृत्तस्य च वच्मि भंग्या ॥ २३ ॥

भ्रान्ति दूर करनेके लिये प्रतिवृत्त भंगिद्वारा इसप्रकार अलग कहागया । पुनः औरभी स्पष्ट करनेके लिये नीचोच्चवृत्त भंगीगत युक्तिद्वारा वर्णन करूंगा ॥ २३ ॥

कक्षास्थमध्यग्रहचिह्नतोऽथ वृत्तं लिखेदन्त्यफलज्यया तत् । नीचोच्चसंज्ञं रचयेच्च रेखां कुमध्यतो मध्यखगो-परिस्थाम् ॥ २४ ॥

कक्षास्थ मध्यग्रह चिह्नित स्थानको केन्द्र कल्पना कर अन्त्य फलज्या अनुसार वृत्तरचना करना चाहिये । पृथिवीमध्यभी मध्यग्रह स्थानगत रेखामें नीचोच्चस्थान रचना करनी चाहिये ॥ २४ ॥

कुमध्यतो दूरतरे प्रदेशे रेखायुते तुंगमिह प्रकल्प्यम् ।
नीचं तथा सन्नतरेऽथ तिर्यङ्नीचोच्चमध्ये रचयेच्च रेखाम् २५

पृथिवीसे (द्वितीयवृत्तके ऊपर) दूरस्थानको तुंग (उच्च) और निकटस्थ स्थानको नीच स्थान कहते हैं । नीचोच्च स्थान मध्यमें तिर्यक् एक रेखा रचना करनी चाहिये ॥ २५ ॥

नीचोच्चवृत्ते भगणांकितेऽस्मिन् मान्दे विलोमं निजकेन्द्रगत्या । शैघ्र्येऽनुलोमं भ्रमति स्वतुंगादारभ्य मध्यद्युचरो हि यस्मात ॥ २६ ॥

स्वीय तुङ्ग स्थानसे आरम्भ करके भगणाङ्कित नीचोच्च वृत्तमें निज केन्द्रगतिसे भ्रमण करते २ मन्दवृत्तमें विलोम और शैघ्र्य वृत्तमें अनुलोम गमन करता है ॥ २६ ॥

अतो यथोक्तं मृदुशीघ्रकेन्द्रं देयं निजोच्चाद्द्युचरस्तदग्रे ।
दोर्ज्योच्चरेखावधि खेटतःस्यात्तिर्य्यक्स्थरेखावधिकोटिजीवा॥

अतएव अपने २ उच्चसे मन्द और शीघ्र केन्द्रगत स्थानमें ग्रहगण दृष्ट होंगे । ग्रहसे उच्च रेखापर रेखा केन्द्रकी भुजज्या भी ग्रहसे तिर्यग् रेखापर रेखाके केन्द्रकी कोटिज्या है ॥ २७ ॥

ये केन्द्रदोः कोटिफले कृते नीचोच्चवृत्ते भुजकोटिजीवे । त्रिज्योर्ध्वतः कोटिफलं मृगादौ कर्क्यादिकेन्द्रे तदधो यतः स्यात् ॥ २८ ॥ अतस्तदैक्यान्तरमत्र कोटिर्दोर्दोः फलं भूग्रहमध्यसूत्रम् । कर्णोऽथ मध्यग्रहकर्णमध्ये फलं धनर्णं तदिहोक्तवच्च ॥ २९ ॥

भुज और कोटिफल किया हुआ है । वह नीचोच्चवृत्तके भुज और कोटिज्याजात हैं । मृगादि कोटिफल त्रिज्यार्द्ध कहकरभी कर्कादिफल त्रिज्यार्द्ध कहकर त्रिज्यामें योग वा वियोग करनेसे स्फुटकोटि होती है । पृथिवी और ग्रहकी मध्यगत रेखाग्रमें ग्रहास्थित है । अतएव मध्यग्रह और स्पष्ट कर्णगत

ग्रहके कक्षा स्थानद्वयके अन्तरको फल कहते हैं । वह पूर्वोक्त मतानुसार योग और त्रियोग करना चाहिये ॥ २८ ॥ २९ ॥

मन्दोच्चतोऽग्रे प्रतिमण्डले प्राग् ग्रहोऽनुलोमं निजकेन्द्र-गत्या । शीघ्राद्विलोमं भ्रमतीव भाति विलम्बितः पृष्ठत एव यस्मात् ॥ ३० ॥

प्रतिमण्डलमें मन्दोच्चसे पूर्वकी ओर निज केन्द्रद्वारा अनुलोम गमन करता है । शीघ्रोच्चसे विलोमकी नाई दीखता है । कारण यह जो, पीछेकी ओर विलम्बित होता है ॥ ३० ॥

नीचोच्चवृत्ते पुनरन्यथा ते तस्यानुलोमप्रतिलोमयाने ।
एका गतिः सा प्रतिभानमन्यत्प्राज्ञैःफलार्थं प्रविकल्पितं तत् ३१

नीचोच्चवृत्तमें अनुलोम और प्रतिलोभ गमन अन्यप्रकारसे सम्पादित होता है, सबकी गति एक है,किन्तु पण्डितोंने फल लानेके लिये ऐसी कल्पना की है ॥ ३१ ॥

भंगिद्वयं चेल्लिखितं विमिश्रं वृत्तद्वयेऽप्यत्र यथोक्तदत्तः ।
नीचोच्चवृत्तप्रतिवृत्तयोगे भवत्यवश्यं द्युचरस्तदानीम् ३२

ये दोनों भंगि एकत्र लिखनेसे एवं यथोक्त दोनों वृत्तोंमें ग्रह निर्धारित होनेपर और नीचोच्चवृत्त और प्रतिमण्डल योग स्थानमें अवश्यग्रह उस समय दीखेगा ॥ ३२ ॥

यथा भवेत्तैलिकयन्त्रमध्ये काष्ठभ्रमो गोभ्रमतो विलोमः ।
नीचोच्चवृत्तभ्रमणं तथान्यत्स्याद्गच्छतोऽपि प्रतिमण्डलेन ३३

जिसप्रकार तैलिक यन्त्र (कोल्हू) में गोभ्रमण और काष्ठभ्रमण विलोम दृष्ट होता है । उसी प्रकार नीचोच्च वृत्त भ्रमण और प्रतिमण्डल भ्रमणकी विभिन्नता प्रतीत होती है ॥ ३३ ॥

मध्यगत्या स्वकक्षाख्यवृत्ते व्रजेन्मन्दनीचोच्च वृत्तस्य मध्यं यतः । तद्गतौ शीघ्रनीचोच्चमध्यं तथा शीघ्रनीचो-च्चवृत्ते स्फुटः खेचरः ॥ ३४ ॥

स्वकक्षाख्य वृत्तमें अपनी मध्यगति द्वारा ग्रह भ्रमण करता है; मन्द नीचेच्च धृत्तजात मध्यसे शीघ्रनीचोच्च वृत्तमें स्फुट ग्रह अवस्थित करता है ॥ ३४ ॥

शीघ्रनीचोच्चवृत्तस्य मध्यस्थितिं ज्ञातुमादौ कृतं कर्म मान्दं ततः । खेटबोधाय शैघ्र्यं मिथः संश्रिते मान्दशैघ्र्ये हि तेनासकृत्साधिते ॥ ३५ ॥

शीघ्रनीचोच्च वृत्तकी मध्यस्थिति जाननेके लिये पहिले मान्द्य कर्म करना पडता है शैघ्र्यसे ग्रहस्थान जाना जाताहै । किन्तु परस्पर इसप्रकार मिले हुए रहनेसे असकृत् संस्कारका प्रयोजन होता है ॥ ३५ ॥

स्वल्पान्तरत्वान्मृदुकर्मणीह कर्णः कृतो नेति वदन्ति केचित् । त्रिज्योद्धृतः कर्णगुणःकृतेऽपि कर्णे स्फुटः स्यात्परिधिर्यतोऽत्र ३६ तेनाद्यतुल्यं फलमेति तस्मात्कर्णः कृतो नेति च केचिदूचुः । नाशंकनीयं न चले किमित्थं यतो विचित्रा फलवासनात्र ॥३७॥

कोई २ कहता है जो, थोडे अन्तरके लिये मन्द कर्म्ममें करण ग्रहण नहीं कियाजाता, दूसरे लोग कहते हैं जो, परिधिको कर्णद्वारा गुणनकर त्रिज्यासे भाग करना चाहिये और उसके पीछे कर्णव्यवहार किया जा सके तो पूर्वसंस्कारका कोई प्रयोजन नहीं किन्तु चल कर्म्ममें वैसी आशङ्काका प्रयोजन नहीं । कारण यह है जो,यहां अन्यप्रकारकी वासना है ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

प्राक् पश्चात्प्रतिमण्डलस्थखचरं द्रष्टा कुमध्यस्थितः
कक्षायां खलु यत्र पश्यति नतं नो तत्र भूपृष्ठगः ।
मध्याह्ने तु कुमध्यपृष्ठगनरौ तुल्यं यतः पश्यतस्ते-
नोक्तं नतकर्म लम्बनविधौ सा युक्तिरत्रापि सा ॥ ३८ ॥

पृथिवी मध्यगत व्यक्तिकक्षामें अतिमडलस्थ ग्रहको देखता है, किंतु भूपृष्ठगतव्यक्ति जिस स्थानमें देखता वह स्थान कुछ पूर्व या पश्चिम गत है । किंतु मध्याह्नमें उन दोनोंहीको एक स्थानमें देखेगा इसकारण नतकर्म्मका प्रयोजन होता है । लम्बनका जैसा नियम है उसी नियमको यहांभी लाना चाहिये ३८

कक्षामध्यगतिर्य्यग्रेखाप्रतिवृत्तसंपाते ।
मध्यैव गतिः स्पष्टा परं फलं तत्र खेटस्य ॥ ३९ ॥

प्रतिवृत्तमें कक्षामध्यम–तिर्य्यगरेखाग्रगत होनेपर मध्यगति स्फुटगतिकी नाईं होती है, ग्रहका फल उससमय चरम होता है ॥ ३९ ॥

वंशोद्भवाभिः प्रतिमण्डलाद्यं कृत्वा शलाकाभिरिदं यथोक्तम् । प्रचाल्य तुंगं खचरं च गत्या वक्रादि सर्वं खलु दर्शयेद् द्राक् ४०

वंशशलाकाद्वारा प्रतिमण्डलादि निर्म्माण करके तुंग (उच्च) और ग्रहोंको अंकित करके वक्रादि समस्त गतिको दिखा सकते हैं ॥ ४० ॥

वृत्तस्य मध्यं किल केन्द्रमुक्तं केन्द्रं ग्रहोच्चान्तरमुच्यतेऽतः।
यतोऽन्तरे तावति तुंगदेशान्नीचोच्चवृत्तस्य सदैव केन्द्रम् ४१

वृत्तके मध्यको केन्द्र कहते हैं, कारण यह जो, तुंगस्थानसे नीचोच्चवृत्तमें केन्द्र उतनी दूरमें नियत अवस्थित है ॥ ४१ ॥

ग्रहस्य कक्षा चलकर्णनिघ्नी स्फुटा भवेद्व्यासदलेन भक्ता।
तद्व्यासखण्डान्तरितःकुमध्यात्सभ्राम्यते हि प्रवहानिलेन४२

ग्रहकी कक्षा शीघ्रकर्णद्वारा गुणनकर व्यासार्द्धसे भाग करनेपर स्फुट कक्षा होती है। पृथिवी मध्यसे उसके व्यासार्द्ध दूरमें अवस्थित होकर वह वायु (Force of Interen) द्वारा चालित होकर भ्रमण करता है ॥ ४२ ॥

मध्यमार्कोदयात्प्राक् स्फुटार्कोदयः स्यादृणे तत्फले खे यतोऽनन्तरम् ! तेन भास्वत्फलोत्थासुजातं क्षयः स्वं फलं युक्तियुक्तं निरुक्तं ग्रहे ॥ ४३ ॥

फल, ऋण होनेपर, सूर्य्योदयके पहिले स्फुट सूर्योदय होता है; धन होनेसे इसके विपरीत होता है। इस कारण सूर्य्य फलानुसार प्राणजातक्षय और संस्कार युक्तियुक्त होता है ॥ ४३ ॥

ये दर्भगर्भाग्रधियोऽत्र तेषां स्याच्छेद्यकार्थः परमाणुरूपः। येऽन्ये जडाः कुण्ठधियश्च तेषां स्यादिन्द्रवज्राहतपक्षतुल्यः ॥ ४४ ॥

इति श्रीभास्करीये गोलाध्याये स्फुटगतिवासनायां
छेद्यकाधिकारः।

जिन लोगोंकी दर्भाग्रसमान बुद्धि है:—वे लोग इस छेद्यके अर्थको परमाणुरूप (छोटा) मनमें समझेंगे और अन्य जड़बुद्धिलोग इन्द्रवज्र निराकृत पक्ष पर्व्वतकी नाई (बड़ा—कठिन) समझेंगे ॥ ४४ ॥

इति स्फुटगतिवासना।

सुसरलवंशशलाकावलयैः श्लक्ष्णैः सचक्रभागाङ्कैः ।
रचयेद्गोलं गोले शिल्पे चानल्पनैपुणो गणकः ॥ १ ॥

गोलबन्ध ।

शिल्पनिपुण गणक अत्यन्त कोमलवंशशलाकानिर्म्मितवलयद्वारा गोल रचना कर उसमें अंशादि (अंश, कलाआदि) लिखे ॥ १ ॥

कृत्वादौ ध्रुवयष्टिमिष्टतरुजामृज्वीं सुवृत्तां ततो
यष्टीमध्यगतां विधाय शिथिलां पृथ्वीमपृथ्वीं बहिः ।
बध्नीयाच्छशिसौम्यशुक्रतपनारेज्यार्किभानां दृढा-
न्गोलांस्तत्परितः श्लथौ च नलिकासंस्थौ खदृग्गोलकौ॥२॥

सरल सुदृढ काष्ठनिर्मित ध्रुवयष्टि निर्म्माण कर उसके मध्यभागमें शिथिल रूपसे पृथिवीको स्थापित करे, उसके बाहर प्रदेशमें क्रमशः चन्द्र, बुध, शुक्र, रवि, मङ्गल, बृहस्पति और शनिका गोल सब दृढरूपसे निबन्ध करे, उसके ऊपर नालिकाबद्ध खगोल और दृग्गोल नामक दो गोल रचना करे ॥ २ ॥

पूर्वापरं विरचयेत्सममण्डलाख्यं याम्योत्तरञ्च विदिशो-
र्वलयद्वयञ्च । उध्वाध एवमिह वृत्तचतुष्कमेतदावेष्ट्य
तिर्य्यगपरं क्षितिजं तदर्धे ॥ ३ ॥

पूर्वापर दिक्स्पर्शी सममण्डलनामक वृत्त और दक्षिण और उत्तर दिक्गामी याम्योत्तरवृत्त और अन्य दो कोण वृत्त बनावे, इन सब वृत्तोंको वेष्टन कर तिर्य्यग्गत क्षितिजरेखा (Horizon) इन सबके बीच होकर गमन करता है ॥ ३ ॥

पूर्वापरक्षितिजसंगमयोर्विलग्नं याम्ये ध्रुवे पललवैः
क्षितिजादधःस्थे । सौम्ये कुजादुपरि चाक्षलवैर्ध्रुवे
तदुन्मण्डलं दिननिशोः क्षयवृद्धिकारि ॥ ४ ॥

पूर्व्वापर और क्षितिज रेखाके संगम होकर और एक दूसरा वृत्त रचना करे, वह स्वदेशीय अक्षांशपरिमित सौम्य और याम्य (उत्तर×दक्षिण) दोनों ध्रुवोंसे दूरमें अवस्थित है । इस वृत्तका नाम उन्मण्डल है यही दिनरात्रिका क्षय वृद्धिकारी है ॥ ४ ॥

पूर्वापरस्वस्तिकयोर्विलग्नं खस्वस्तिकाद्दक्षिणतोऽक्षभागैः ।
अधश्च तैरुत्तरतोऽङ्कितश्च षष्ट्यात्र नाडीवलयं विदध्यात्५॥

उसी पूर्व्वापर स्थान होकर अन्य और एक वृत्त इस प्रकार रचना करे जिसमें ख (Zinith)स्थानसे अक्षके परिमाणानुसार निम्न देशमें और नीचेसे उस परिमाणानुसार ऊर्ध्वदेश होकर गमन करेगा इस वृत्तमें ६० संख्यक घटिका अंकित होंगी ॥ ५ ॥

ऊर्ध्वाधरस्वस्तिककीलयुग्मे प्रोतं श्लथं दृग्वलयं तदन्तः ।
कृत्वा परिभ्राम्य च तत्र तत्र नेयं ग्रहो गच्छति यत्र यत्र६॥

ऊर्ध्व और अधः स्थानगत दो कीलोंसे प्रोत होकर दृग्वलय अवस्थित है। वह पूर्व्वोक्त वृत्त सबके भीतर रहकर भ्रमण करने योग्य होगा, अर्थात् ग्रह जिस स्थानमें रहता है, उस स्थानमें लाया जासके इस प्रकारका होगा ॥ ६ ॥

ज्ञेयं तदेवाखिलखेचराणां पृथक् पृथग्वा रचयेत्तथाष्टौ ।
दृङ्मण्डलं वित्रिभलग्नकस्य दृक्क्षेपवृत्ताख्यमिदं वदन्ति७॥

उस वृत्तको सम्पूर्ण ग्रहोंहीका ज्ञान किया जाय अथवा पृथक् २ आठ वृत्त रचना चाहिये, सात ग्रहोंका और एक दशमोदयके लिये। शेषोक्तको दृक्क्षेप वृत्त कहते हैं ॥ ७ ॥

बद्ध्वा खगोले नलिकाद्वयं च ध्रुवद्वये तन्नलिकास्थमेव । बहिः
खगोलाद्विदधीत धीमान् दृग्गोलमेवं खलु वक्ष्यमाणम् ॥ ८ ॥

खगोलके दोनों ध्रुवोंमें दो नलिका बाँधकर उसके ऊपर वक्ष्यमाण रीत्यनुसार दृग्गोल विधान करना चाहिये ॥ ८ ॥

भगोलवृत्तैः सहितः खगोलो दृग्गोलसंज्ञोऽपममण्डलाद्यैः ।
द्विगोलजातं खलु दृश्यतेऽत्र क्षेत्रं हि दृग्गोलमतो वदन्ति ९॥

अपममण्डलादि भगोलसहित खगोल दृग्गोल संज्ञा पाता है । इसका कारण यह है कि, इस स्थानमें क्षेत्र दो गोलोंसे मिश्ररूपसे दृग्गोल कहलाता है ॥ ९ ॥

याम्योत्तरक्षितिजवत्सुदृढं विदध्यादाधारवृत्तयुगलं ध्रुव-
यष्टिबद्धम् । षष्ट्यंकमत्र सममण्डलवत्तृतीयं नाड्याह्वयं
च विषुवद्वलयं तदेव ॥ १० ॥

याम्योत्तर और क्षितिज रेखाकी नाईं दो आधारवृत्त रचना करना चाहिये । समनण्डलकी नाईं ६० घटिका विभक्त विषुवन्मण्डल उसके ऊपर संयोग करेगा ॥ १० ॥

क्रान्तिवृत्तं विधेयं गृहांकं भ्रमत्यत्र भानुश्च भार्धे कुभा भानुतः । क्रान्तिपातः प्रतीपं तथा ग्रस्फुटाः क्षेपपाताश्च तत्स्थानकान्यङ्कयेत् ॥ ११ ॥

१२ घर अंकित क्रान्तिवृत्त रचनाकरनेपर उस वृत्तमें सूर्य्य और ६ राशि अन्तर पर पृथिवीकी छाया भ्रमण करती है । क्रान्तिपात विलोम गमन करता है–स्फुटक्षेपपात स्थानादि उस वृत्तमें अंकित करना चाहिये ॥ ११ ॥

क्रान्तिपाते च पाताद्भषट्कान्तरे नाडिकावृत्तलग्नं विदध्यादिदम् । पाततः प्राक् त्रिभे सिद्धभागैरुदग्दक्षिणे तैश्च भागैर्विभागेऽपरे ॥ १२ ॥

यह क्रांतिवृत्त, क्रान्तिपात और ६ राशि दूरमें नाडिकावृत्तमें बद्ध, क्रान्तिपातसे तीन राशि दूरमें२४अंश अन्तरपर पूर्वकी और उत्तर कि ओर पश्चिममें अवस्थित है ॥ १२ ॥

नाडिकामण्डले क्रान्तिवृत्तं यथा क्रान्तिवृत्ते तथा क्षेपवृत्तं न्यसेत् । क्षेपवृत्तं तु राश्यंकितं तत्र च क्षेपपातेषु चिह्नानि कृत्वोक्तवत्॥१३॥क्रान्तिवृत्तस्य विक्षेपवृत्तस्य च क्षेपपाते सषड्भे च कृत्वा युतिम् । क्षेपपाताग्रतः पृष्ठतश्च त्रिभे क्षेपभागैः स्फुटैः सौम्ययाम्ये न्यसेत ॥ १४ ॥

नाडिका मण्डलमें जिस प्रकार क्रान्तिवृत्तमें उसी प्रकार क्षेपवृत्त संयोजित होगा । क्षेपवृत्त को राश्यंकित कर पूर्वोक्त प्रकारसे क्षेपपातचिह्न करना चाहिये । वहां पर ६ राशि दूरमें क्रान्तिवृत्तके साथ योगकर तीन राशिदूरमें स्फुट विक्षेपानुसार दक्षिणमें या वाममें रक्खे ॥ १३ ॥ १४ ॥

शीघ्रकर्णेन भक्तास्त्रिभज्यागुणाः स्युः परक्षेपभागा ग्रहाणां स्फुटाः । क्षेपवृत्तानि षण्णां विदध्यात् पृथक् स्वस्ववृत्ते भ्रमन्तीन्दुपूर्वा ग्रहाः ॥ १५ ॥

ग्रहोंका परम विक्षेप ज्याद्वारा गुणन कर शीघ्रकर्णद्वारा भाग करनेपर स्पष्ट विक्षेप होगा । (सूर्य्यव्यतीत) छः ग्रहोंका अलग २ क्षेप-

वृत्त विधान किया जावेगा। अपने २ वृत्तमें चन्द्रादि छः ग्रह भ्रमण करते है ॥ १५ ॥

नाडिकामण्डलात्तिर्य्यगत्रापमः क्रान्तिवृत्तावधिः क्रान्तिवृत्ताच्छरः। क्षेपवृत्तावधिस्तिर्य्यगेवं स्फुटो नाडिकावृत्तक्षेटान्तरालेऽपमः ॥ १६ ॥

नाडिकावृत्तसे क्रान्तिवृत्त पर्य्यन्त तिर्यक् रेखाको 'अपम' कहते हैं। क्रांतिवृत्तसे क्षेपवृत्तपर्य्यन्त तिर्यक् रेखाको स्पष्टशर कहते हैं। नाडिकावृत्त ग्रहके और अन्तरको अपम कहते हैं ॥ १६ ॥

विषुवत्क्रान्तिवलययोः संपातः क्रान्तिपातः स्यात्।
तद्भगणाः सौरोक्ता व्यस्ता अयुतत्रयं कल्पे ॥ १७ ॥

विषुवन् और क्रांतिवलयके संयोगस्थलको क्रांतिपात कहते हैं। सौरसिद्धान्तानुसार कल्पमे उसका भगण ३०००० विपरीत दिशामें ॥ १७ ॥

अयनचलनं यदुक्तं मुञ्जालाद्यैः स एवायम्। तत्पक्षे तद्भगणाः कल्पेगोऽगर्तुनन्दगोचन्द्राः १९९६६९ ॥ १८ ॥

मुञ्जालादिके मतानुसार इसकी भगण संख्या कल्पमें १९९,६६९ है॥१८॥

तत्संजातं पातं क्षिप्त्वा खेटेऽपमः साध्यः। क्रान्तिवशाच्चरमुदयाश्चरदललग्नागमे ततः क्षेप्यः ॥ १९ ॥

उससे आयेहुए ग्रहसे पातद्वारा अपम साधन करे। चर, उदय, लग्न प्रभृति, अपमसे साधित होता है, अत एव पहिले यही संस्कार करना पड़ता है ॥ १९ ॥

एवं क्रान्तिविमण्डलसम्पाताः क्षेपपाताः स्युः।
चन्द्रादीनां व्यस्ताः क्षेपानयने तु ते योज्याः ॥ २० ॥

इसप्रकार क्रांति और विमण्डल संपातही क्षेपपात है, अतएव चन्द्रादिमें यह विपरीतगामी संस्कार क्षेपानयनमें योग करना होगा ॥ २० ॥

मन्दस्फुटो द्राक् प्रतिमण्डले हि ग्रहो भ्रमत्यत्र च तस्य पातः। पातेन युक्ताद्गणितागतेन मन्दस्फुटात्खेचरतः शरोऽस्मात् ॥ २१ ॥

पात और मन्दस्पष्टग्रह शीघ्रप्रतिमण्डलमें भ्रमण करता है । इसलिये मन्दग्रहमें भी गणितसे लायेहुए पातके योगसे शर निश्चय होगा ॥ २१ ॥

पातेऽथवा शीघ्रफलं विलोमं कृत्वा स्फुटात्तेन युता-च्छरोऽतः। चन्द्रस्य कक्षावलये हि पातः स्फुटाद्विधो-र्मध्यमपातयुक्तात् ॥ २२ ॥

अथवा शीघ्र फलपातमें योग वा वियोग करके स्फुटमें योग कर, उससे शर साधन करे। चन्द्रमाकी कक्षावृत्तम पातकी अवस्थिति कहकर स्पष्ट चन्द्रमामें पातयोग करके शरनिर्देश करना चाहिये ॥ २२ ॥

ये चात्र पातभगणाः पठिता ज्ञभृग्वोस्ते शीघ्रकेन्द्रभग-णैरधिका यतः स्युः। स्वल्पाः सुखार्थमुदिताश्चलकेन्द्र-युक्तौ पातौ तयोः पठितचक्रभवौ विधेयौ ॥ २३ ॥

बुध और शुक्रके शीघ्र केन्द्रभ्रमणमें पातभगण युक्त होनेपर सूक्ष्मपात भगण होगा। यह गणकी सुगमताके लिये किया जाता है। इस लिये उनका चलकेन्द्र भगणभी पातभगण योग करनेके लिये प्रयोजन होता है ॥ २३ ॥

चलाद्विशोध्यः किल केन्द्रसिद्ध्यै केन्द्रे सपाते द्युच-रस्तु योज्यः। अतश्चलात्पातयुताज्ज्ञभृग्वोः सुधीभि-राद्यैः शरसिद्धिरुक्ता ॥ २४ ॥

शीघ्रसे मध्यग्रह घटानेपर केन्द्र होताहै। केन्द्र और पात एवं ग्रह योगफल विक्षेप केन्द्र है अतएव पूर्व्व पण्डितगण कर्तृक पातयुक्त ग्रहोच्चसे बुध और शुक्रका शरादिगणित होता है ॥ २४ ॥

स्फुटोनशीघ्रोच्चयुतौ स्फुटौ तयोः पातौ भगोले स्फुट एव पातः। ग्रहस्य गोले कथितापमण्डलं प्रकल्प्य कक्षावलयं यथोदितम् ॥ २५ ॥

ये दोनों स्फुटसे न्यून, शीघ्रोच्च पातयोग करनेपर स्फुटपात होगा। यह स्पष्टपात भगोलमें दृष्ट होगा ॥ २५ ॥

निबध्य शीघ्रप्रतिवृत्तमस्मिन् विमण्डलं तत्पठितैः शरांशैः। मध्योऽत्र पातो द्युसदां ज्ञभृग्वोः स्वशीघ्र-केन्द्रेण युतस्तु देयः ॥ २६ ॥

पात और मन्दस्पष्टग्रह शीघ्रप्रतिमण्डलमें भ्रमण करता है । इसलिये मन्दग्रहमें भी गणितसे लायेहुए पातके योगसे शर निश्चय होगा ॥ २१ ॥

पातेऽथवा शीघ्रफलं विलोमं कृत्वा स्फुटात्तेन युताच्छरोऽतः । चन्द्रस्य कक्षावलये हि पातः स्फुटाद्विधोर्मध्यमपातयुक्तात् ॥ २२ ॥

अथवा शीघ्र फलपातमें योग वा वियोग करके स्फुटमें योग कर, उससे शर साधन करे । चन्द्रमाकी कक्षावृत्तम पातकी अवस्थिति कहकर स्पष्ट चन्द्रमामें पातयोग करके शरनिर्देश करना चाहिये ॥ २२ ॥

ये चात्र पातभगणाः पठिता ज्ञभृग्वोस्ते शीघ्रकेन्द्रभगणैरधिका यतः स्युः । स्वल्पाः सुखार्थमुदिताश्चलकेन्द्रयुक्तौ पातौ तयोः पठितचक्रभवौ विधेयौ ॥ २३ ॥

बुध और शुक्रके शीघ्र केन्द्रभ्रमणमें पातभगण युक्त होनेपर सूक्ष्मपात भगण होगा । यह गणकी सुगमताके लिये किया जाता है । इस लिये उनका चलकेन्द्र भगणभी पातभगण योग करनेके लिये प्रयोजन होता है ॥ २३ ॥

चलाद्विशोध्यः किल केन्द्रसिद्ध्यै केन्द्रे सपाते द्युचरस्तु योज्यः । अतश्चलात्पातयुताज्ज्ञभृग्वोः सुधीभिराद्यैः शरसिद्धिरुक्ता ॥ २४ ॥

शीघ्रसे मध्यग्रह घटानेपर केन्द्र होताहै । केन्द्र और पात एवं ग्रह योगफल विक्षेप केन्द्र है अतएव पूर्व्व पण्डितगण कर्तृक पातयुक्त ग्रहोच्चसे बुध और शुक्रका शरादिगणित होता है ॥ २४ ॥

स्फुटोनशीघ्रोच्चयुतौ स्फुटौ तयोः पातौ भगोले स्फुट एव पातः । ग्रहस्य गोले कथितापमण्डलं प्रकल्प्य कक्षावलयं यथोदितम् ॥ २५ ॥

ये दोनों स्फुटसे न्यून, शीघ्रोच्च पातयोग करनेपर स्फुटपात होगा । यह स्पष्टपात भगोलमें दृष्ट होगा ॥ २५ ॥

निबध्य शीघ्रप्रतिवृत्तमस्मिन् विमण्डलं तत्पठितैः शरांशैः । मध्योऽत्र पातो द्युसदां ज्ञभृग्वोः स्वशीघ्रकेन्द्रेण युतस्तु देयः ॥ २६ ॥

ग्रहगोलमें उल्लिखित अपमण्डलको कक्षावृत्त रचनाकर, उसमें शीघ्र प्रतिमण्डल निबद्धकर प्रतिवृत्तमें पूर्वोक्त शरांश परिमाणसे विमण्डल रचे। इसमें ग्रहके पात निर्णय करे (बुध और शुक्रके स्वीय शीघ्र केन्द्रयुक्त पात ग्रहण-करना होता है) ॥ २६ ॥

ईप्सितक्रान्तितुल्येऽन्तरे सर्वतो नाडिकाख्यादहोरात्र-वृत्ताह्वयम् । तत्र बद्ध्वा घटीनां च षष्ट्याङ्कयेदस्य विष्कम्भखण्डं द्युजीवा मता ॥ २७ ॥

ईप्सित क्रांतितुल्य अन्तरमें सर्व्वत्र अहोरात्र वृत्त रचना करके ६०घटिका अंकित करना चाहिये। इस वृत्तके व्यासार्द्धका नाम द्युज्या है ॥ २७ ॥

अथ कल्प्या मेषाद्या अनुलोमं क्रान्तिपाताङ्कात् ।
एषां मेषादीनां द्युरात्रवृत्तानि बध्नीयात् ॥ २८ ॥

क्रांतिपातसे मेषादिराशिका द्युरात्रवृत्त बन्धन करना चाहिये ॥ २८ ॥

नाडीवृत्तोभयतस्त्रीणि त्रीणि क्रमोत्क्रमात्तानि ।
एष भगोलः कथितः खेचरगोलोऽयमेव विज्ञेयः ॥ २९ ॥

नाड़ीवृत्तके दोनों ओर तीन २ कर इसप्रकार वृत्त हैं। वे मेषादिक्रमोत्क्रम-रूपसे व्यवस्थित हैं। भगोल कहागया। इसको ग्रह गोल समझना चाहिये २९

अत्रापमण्डले वा सूत्राधारैरधश्च तस्यैव ।
शून्यादीनां कक्षा बध्नीयादूर्णनाभजालाभाः ॥ ३० ॥

अथवा इस अपमण्डलमें सूत्रके आधारसे निबन्ध करके नीचेकी और शनि आदिकी कक्षा बन्धन करनी चाहिये ॥ ३० ॥

बद्ध्वा भगोलमेवं यष्ट्यां यष्टिं खगोलनलिकान्तः ।
प्रक्षिप्य भ्रमयेत्तं यष्ट्याधारं स्थिरौ खदृग्गोलौ ॥ ३१ ॥

इति श्रीभास्कराचार्यविरचिते गोलाध्याये
गोलबन्धाधिकारः समाप्तः ।

इसप्रकार भगोलको खगोलबद्धनालिकावृत्तस्थितयष्टिमें बांधकर भ्रमण करना चाहिये। भूगोल भ्रमण करेगा और खगोल और दृग्गोल स्थिर रहेगा ॥३१॥

इति गोलबन्ध ।

उन्मडलक्ष्मावलयान्तराले द्युरात्रवृत्ते चरखण्डकालः ।
तज्ज्यात्र कुज्या चरशिञ्जिनी स्याद्व्यासार्धवृत्ते परिणामिता सा १

उन्मण्डल और कुमण्डलमध्यवर्त्ती द्युरात्रवृत्तमें चरखण्ड काल अवस्थित है। उसकी धनुर्ज्याको कुज्या और व्यासार्द्ध वृत्तमें भी परिणत करनेपर चरज्या होती है ॥ १ ॥

निरक्षदेशे क्षितिजाख्यवृत्तमुन्मण्डलं तज्जगुरन्यदेशे ।
स्वे स्वे कुजेऽर्कस्य समुद्गमोऽस्माच्चरार्धमर्कोदययोस्तु मध्ये २

निरक्ष देशमें क्षितिज वृत्तही उन्मण्डल है अन्यान्य देशमें तद्गत होनेपर क्षितिज वृत्तमें सूर्य्यको समुद्र गमनमें होता है। इसी कारण उभयस्थानके सूर्य्योदयमें चरका प्रयोजन होता है ॥ २ ॥

आदौ स्वदेशेऽथ निरक्षदेशे सूर्योदयो ह्यस्तमयोऽन्यथातः ।
ऋणं ग्रहेऽस्मादुदये स्वमस्ते फलं चरोत्थं रविसौम्यगोले ॥३॥

सूर्य्य सौम्य गोलमें अवस्थित होनेपर (उत्तरगोलमें) पहिले स्वदेशमें और उसके पीछे निरक्षदेशमें सूर्य्यास्त होता है। इसकारण चरफल सूर्य्योदयमें ऋण और सूर्य्यास्तमें जोड़े ॥ ३ ॥

याम्ये विलोमं खलु तत्र यस्मादुन्मण्डलं स्वक्षितिजादधस्तात् ।
नाड्याद्वयादुत्तरयाम्यभागौ गोलस्य तावुत्तरयाम्यगोलौ ॥४॥

याम्यमें स्थित होनेपर विलोम होता है, कारण यह है कि क्षितिजवृत्तके अधोभागमें उन्मण्डलमें अंश रहता है। नाडिवलयके उत्तर और दक्षिणमें उस २ नामका गोलार्द्ध अवस्थित है ॥ ४ ॥

अतश्च सौम्ये दिवसो महान्स्याद्रात्रिर्लघुर्व्यस्तमतश्च याम्ये ।
द्युरात्रवृत्ते क्षितिजादधःस्थे रात्रिर्यतः स्याद्दिनमानमूर्ध्वे ॥५॥

इसी कारण सौम्यमें दिन वड़ा और रात्रि छोटी होती हैं, दक्षिणमें उसके उलटा होता हैं, द्युरात्र वृत्तके अंश क्षितिजके ऊर्ध्व और अधःस्थित अनुसार दिनमान और रात्रिमान होता है ॥ ५ ॥

सदा समत्वं द्युनिशोर्निरक्षेनोन्मण्डलं तत्र कुजाद्यतोऽन्यत् ।
षट्षष्टिभागाभ्यधिकाः पलांशा यत्राथ तत्रास्त्यपरो विशेषः ६

निरक्षदेशमें रात्रि दिवस सदैव समान होता है, कारण यह हे कि क्षितिजसे पृथक् उन्मण्डल नहीं है किन्तु ६६ अधिक पलांशगत स्थानमें विशेप दीखपड़ता है ॥ ६ ॥

लम्बाधिका क्रान्तिरुदक् च यावत्तावद्दिनं सन्ततमेव तत्र । यावच्च याम्या सततं तमिस्रा ततश्च मेरौ सततं समार्धम् ॥ ७ ॥

जिस समय लम्बकी अपेक्षा उत्तर क्रांति अधिक होती है,(तब सबही समयमें दिन होगा एवं जिस समय दक्षिणक्रांति उससे अधिक होगी, तब सतत अन्धकार होगा अर्थात् रात होगी इसकारण मेरु प्रदेशमें दिन और रात्रि छः महीनेकी होती है ॥ ७ ॥

विषुवद्वृत्तं द्युसदां क्षितिजत्वमितं तथा च दैत्यानाम् । उत्तरयाम्यौ क्रमशो मूर्धोर्ध्वगतौ ध्रुवौ यतस्तेषाम् ॥ ८ ॥

देवता और दैत्यादिका विषुवत्ही क्षितिज है, कारण यह है कि, उन सबके ऊर्ध्वस्थित उत्तर और दक्षिण ध्रुव है ॥ ८ ॥

उत्तरगोले क्षितिजादूर्ध्वं परितो भ्रमन्तमादित्यम् । सव्यं त्रिदशाः सततं पश्यन्त्यसुरा असव्यगं याम्ये ॥ ९ ॥

उत्तरगोलाधिष्ठान कालमें देवता लोग सूर्य्यको क्षितिजसे ऊर्ध्वस्थित होकर सव्य (बायेंसे दाहिने) भ्रमण करते और असुरगण दक्षिण गोलाधिष्ठान कालमें अपसव्य गति भ्रमण करते देखते हैं ॥ ९ ॥

दिनं दिनेशस्य यतोऽत्र दर्शने तमो तमोहन्तुरदर्शने सति । कुपृष्ठगानां द्युनिशं यथा नृणां तथा पितॄणां शशिपृष्ठवासिनाम् ॥ १० ॥

सूर्य्यके दर्शनसे दिन और अदर्शनमें रात्रि होती है । यही पृथिवी पृष्ठ-स्थ मनुष्योंकी दिन रात्रि है इसी प्रकार चन्द्रपृष्ठस्थित पितृलोगोंकी दिन रात होती है ॥ १० ॥

दिनं सुराणामयनं यदुत्तरं निशेतरत्सांहितिकैः प्रकीर्तितम् । दिनोन्मुखेऽर्के दिनमेव तन्मतं निशा तथा तत्फलकीर्तनाय तत ॥ ११ ॥

उत्तरायण देवताओंका दिन, अन्यथा रात्रि यही सांहितिक लोग कहते हैं, उस मतसे सूर्य्य दिनोन्मुख होनेपर दिन अन्यथा निशा होती है यह फल कीर्तनके लिये कहागया है ॥ ११ ॥

द्वन्द्वान्तमारोहति यैःक्रमेण तैरेव वृत्तैरवरोहतीनः । यत्रैव दृष्टः प्रथमं स देवैस्तत्रैव तिष्ठन् न विलोक्यते किम् ॥१२॥

जिन सब वृत्तद्वारा क्रमानुसार मिथुनान्तपर्य्यन्त सूर्य्य आरोहण करता है उसी २ वृत्तद्वारा क्रमानुसार अवरोहण करता है । पहिले आरोहणसमय जिस स्थानसे दीखता है, अवरोहणकालमें वहांसे क्यों नहीं देवलोककर्तृक दृष्ट होगा ? ॥ १२ ॥

विधूर्ध्वभागे पितरो वसन्तः स्वाधः सुधादीधितिमामनन्ति । पश्यन्ति तेऽर्कं निजमस्तकोर्ध्वे दर्शे यतोऽस्माद्द्युदलं तदेषाम् ॥ १३ ॥

चन्द्रमाके ऊर्ध्वभागमें पितृगण वास करते हैं । उसके दूसरी ओर अमृतके समुद्रकी कल्पना कीजाती है । इसप्रकार होनेपर वे लोग अमावस्याके दिन सूर्यको अपने मस्तकपर देखते हैं अतएव यही उन लोगोंका मध्याह्न है ॥ १३ ॥

भार्धान्तरत्वान्न विधोरधःस्थं तस्मान्निशीथः खलु पौर्णमास्याम् । कृष्णे रविः पक्षदलेऽभ्युदेति शुक्लेऽस्तमेत्यर्थत एव सिद्धम् ॥ १४ ॥

छः राशि अन्तर होनेके कारण चन्द्रमाके निम्नभागमें सूर्य्य अवस्थान करनेपर पूर्णिमासमयमें निशीथ होता है । अतएव कृष्णपक्षार्द्धमें अर्थात् अष्टमीके सूर्य्यके उदय और शुक्लपक्षार्द्धमें अस्त यह सिद्ध हुआ ॥ १४ ॥

यदतिदूरगतो द्रुहिणः क्षितेःसततमाप्रलयं रविमीक्षते । भवति तावदयं शयितश्च तद्युगसहस्रयुगं द्युनिशं विधेः ॥ १५ ॥

पृथिवीसे अतिदूरत्ववशात् ब्रह्मा प्रलयपर्य्यन्त सूर्य्य दर्शन करते हैं । उतने कालतक वह सोते हैं । इस कारण ब्रह्माका एक दिनरात (अहोरात्र) दो सहस्र वर्षका होता है ॥ १५ ॥

यो हि प्रदेशोऽपममण्डलस्य तिर्य्यक् स्थितो यात्युदयं तथास्तम् । सोऽल्पेन कालेन य ऊर्ध्वसंस्थोऽनल्पेन सोऽस्मादुदया न तुल्याः ॥ १६ ॥

अपमण्डलका जो प्रदेश तिर्यक् स्थित है वह उदय और अस्तकालमें अल्पसमयमें प्रयोजन होता है ऊर्ध्वस्थित होनेपर अधिक समय लगता है । अतएव उदय सब समान नहीं होते ॥ १६ ॥

य उद्गमे याम्यनता मृगाद्याः स्वस्वापमेनापि निरक्षदेशे । याम्याक्षतस्तेऽतिनतत्वमाप्ता उद्यन्ति कालेन ततोऽल्पकेन ॥ १७ ॥

निरक्षदेशमें उदयकालीन याम्यनत मकर आदि छः राशिगण अपने २ अपमके साथ उदित होते है । दक्षिण अक्षप्रदेशमें और भी नतकी अधिकता होनेपर अल्पसमयमें उदित होते है ॥ १७ ॥

कर्क्यादयः सौम्यनता हि येऽत्र ते यान्ति याम्याक्षवशादृजुत्वम् । कालेन तस्माद्बहुनोदयन्ते तदन्तरे स्वं चरखण्डमेव ॥ १८ ॥

कर्क आदि राशिगण सौम्य (उत्तर) नत, याम्याक्ष (दक्षिण अक्ष) वशतः ये सरलता लाभ करते हैं, अतएव ये अधिकसमयमें उदय होते हैं । इन दोनोंके अन्तरको चरखण्ड कहते है । निरक्षदेशीय उदयकाल और स्वदेशीय उदयकालके अन्तरको चरखण्ड कहते है ॥ १८ ॥

भचक्रपादास्तिथिनाडिकाभिः पृथक् समुद्यन्ति निरक्षदेशे । चक्रार्धमाद्यं च तथा द्वितीयं सर्वत्र पूर्णाग्निमिताभिरेव ॥ १९ ॥

निरक्षदेशमें चक्रके प्रति चतुर्थांश १५ घटिकामें उदित होता है प्रथम द्वितीय चक्रार्द्ध सर्वत्र ही ३० घटिकामें उदय होता है ॥ १९ ॥

मेषादेर्मिथुनान्तो नाडीभिस्तिथिमिताभिरुद्वृत्ते ।
लगति कुजे तदधःस्थे प्रथमं ताभिश्चरो नाभिः ॥ २० ॥
कन्यान्ताद्धनुषोऽन्तस्तिथिमितनाडीभिरुद्वलये ।
लगति कुजे चोर्ध्वस्थे पश्चात्ताभिश्चराढ्याभिः ॥ २१ ॥

मेष आदि मिथुनान्त ३ राशि १५ दण्डमें उन्मण्डलवृत्तमें अवस्थित रहता है । किन्तु क्षितिजवृत्त उसके नीचे होनेसे वे चरखण्डके परिमाणसे न्यून समयमें उसमें रहते हैं । किन्तु कन्या आदि धनुराशिपर्य्यन्त ३ राशि उन्म-

ण्डलवृत्तमें १५ दण्ड रहनेपरभी क्षितिजवृत्तके ऊर्ध्वताके कारण और भी चरखण्ड परिमाणानुसार अधिकसमयमें गमन करता है ॥ २० ॥ २१ ॥

तद्रहितत्रिंशद्भिः कन्यान्तो वा झषान्तो वा ।
चरखण्डैरूनाढ्यास्तेन निरक्षोदयाः स्वदेशे स्युः ॥ २२ ॥

कन्यान्त अथवा मीनान्त तीनराशिका मान ३० घटिकासे मिथुनान्त और धनुके अन्त मान घटनेपर निर्णीत होता है । इस कारण निरक्ष देशीय मानानुसार चरखण्ड वियोग किंवा योग करनेपर स्वदेशीय मान सब होता है ॥ २२ ॥

क्षितिजेऽजादिं कृत्वा गोलं भ्रमयन्प्रदर्शयेत्सर्वम् ।
उक्तमनुक्तं चान्यच्छिष्याणां बोधजननार्थम् ॥ २३ ॥

गुरु, शिष्य आदिके बोधके लिये मेष आदि अंकित गोल रचनाकरके परिभ्रमण कराकर क्षितिज रेखामें उक्त और अनुक्त सबही विषय प्रदर्शन करावे ॥ २३ ॥

योऽभ्युदेति समयेन येन तत्सप्तमोऽस्तमुपयाति तेन च । राशिरूर्ध्वमपमण्डलं कुजादर्धमेव सततं यतः स्थितम् ॥ २४ ॥

जो राशि जिस समय उदय हो उसके सप्तम राशि उस समय अस्तंगत होता है। क्षितिजके ऊपर अपमण्डलमें सर्वदा छः राशि स्थित रहती हैं ॥ २४ ॥

यत्र लम्बजलवाजिनोनकास्तत्र नोदयचराद्यमुक्तवत् ।
नान्यसंस्थिततयान्यथोदितं येन नैष विषयो नृगोचरः २५

जिस स्थानका लम्ब २४ अंशकी अपेक्षा न्यून हो वहां उक्त प्रकार चर आदिका उदय नहीं होता । उन सब स्थानोंका विषय उस २ देशकी पृथक् अवस्था वशात् कहा नहीं गया, कारण यह है जो, वहां मनुष्योंका आश्रय नहीं होनेसे नगर सब गोचर (दीखते) नहीं होते ॥ २५ ॥

यत्र लग्नमपमण्डलं कुजे तद्गृहाद्यमिह लग्नमुच्यते ।
प्राचि पश्चिमकुजेऽस्तलग्नकं मध्यलग्नमिति दक्षिणोत्तरे२६

अपमण्डलके जिस स्थानमे पूर्वकी ओर क्षितिज वृत्तमें संलग्न—वही स्थान-लग्न है—यह राशि आदि नामसे परिचित है । पश्चिम दिक्स्थ स्थलको अस्त

लग्न और दक्षिणोत्तर रेखाके अपमण्डलके संयोग स्थानको मध्यलग्न वा दशम लग्न कहते हैं ॥ २६ ॥

लग्नार्थमिष्टघटिका यदि सावनास्तास्तात्कालिकार्ककरणेन भवेयुराक्ष्यः। अक्ष्योदया हि सदृशीभ्य इहापनेयास्तात्कालिकत्वमथ न क्रियते यदाक्ष्यः ॥ २७ ॥

इष्ट घटिका यदि सावन हो तो तात्कालिक सूर्य्यद्वारा नाक्षत्रिक होगा। राशि उदयका समय सब क्रमशः घटीसे घटाना पड़ता है यदि नाक्षत्रिक-समय हो तो सूर्य्यका तात्कालिक समस्थानका प्रयोजन नहीं * ॥ २७ ॥

त्र्यंशयुङ्नवरसाः ६९/२० पलांशका यत्र तत्र विषये कदाचन। दृश्यते न मकरो न कार्मुकं किञ्च कर्किमिथुनौ सदोदितौ ॥ २८ ॥

६९। २० पलांशगत स्थान समूहमें कभी मकर और धनु दृश्य नहीं होता, किन्तु कर्कट और मिथुन सततही उदित रहता है ×॥ २८ ॥

यत्र साङ्घ्रिगजवाजिसंमिता ७८/१५ स्तत्र वृश्चिकचतुष्टयं न च। दृश्यतेऽथ वृषभाच्चतुष्टयं सर्वदा समुदिते च लक्ष्यते ॥ २९ ॥

७८। १५ पलांशगत स्थलमें वृश्चिक आदि चतुष्टय दृश्य नहीं होते, वृष आदि चतुष्टय चिरकाल उदित रहते हैं ॥ २९ ॥

यत्र तेऽथ नवतिः पलांशकास्तत्र काञ्चनगिरौ कदाचन। दृश्यते न भदलं तुलादिकं सर्वदा समुदितं क्रियादिकम् ॥ ३० ॥

---

* इष्ट समयका सायन स्पष्ट सूर्य्य निर्णयपूर्वक जिस राशिमें अवस्थिति करते है, उस राशिका भाग्य निर्णय करना पड़ता है। भोग्य निर्णय समयमें साधारणतः इस प्रकार अनुपात अवलम्ब करना पड़ता है,—राशिका भाग भोग्य—३० स्पष्टांशादि इष्टकालसे पहिले भोग्य वियोग्य करके क्रमशः परनिर्देश करनेपर लग्न होगा इस स्थलमें सायनग्रह ग्रहणकरके अन्तमें सायनलग्नसे अयनांश घटानेपर स्पष्ट होगा।

× हिन्दू ज्योतिर्विद् लोग २४ अंशको परमापक्रम ग्रहण करते हैं। इसी हिसाबसे ३० औ ६० अंशका अपक्रम ९० अंशसे घटानेपर उक्त अंश होगा।

९० पलांशगत काञ्चन पहाड़पर तुलाआदिराशि छः दृश्य नहीं होते मेष आदि सर्वदा उदित रहते है ॥ ३० ॥

राशेर्यस्य निरक्षजोदयसमाः स्वीयाश्चरार्धासवो दृश्यस्तत्र सदा स राशिरिति यन्निर्युक्ति लल्लोदितम् । यद्येवं रसषट् ९६ पलांश–विषये सर्वेऽप्यमी सर्वदा दृश्याः स्युर्युगपच्चरोदयघटीसाम्यादसत्तत्तथा ॥ ३१ ॥

लल्लाचार्य्यने कहा है जो निरक्ष देशीय उदय समय स्वदेशीय चरार्द्ध तुल्य होनेपर वही सतत दृश्य होगी । किन्तु युक्तिविहीन है । यदि सो होता तो ६६ पलांश स्थानमें सब राशिही सदा दृश्य होती, कारण यह है कि, वहां चर और उदय घटी समान हैं ॥ ३१ ॥

षट्षष्टिः सदला लवाः पलभवा यस्मिन्न तस्मिन्धनुर्नक्रश्चापि न वृश्चिको न च घटः पश्चाद्द्रयो ७५।० यत्र च । दृश्यः स्यादिति यत्सदा प्रलपितं लल्लेन गोले निजे गोलज्ञ त्रिलवोनितास्त उदिताः केनोच्यतां हेतुना ॥ ३२ ॥

६६ । ३० अंश पलभाविशिष्ट देशमें धनु और मकर नहीं होता, एवं ७५ अंश स्थानमें वृश्चिक और धनु कभी दृश्य नहीं होता–लल्लकथित वाक्य नितान्त भ्रमयुक्त है । हे गोलज्ञ ! कहिये किस प्रकार इनने तीन अंशकी भूल की है ? ॥ ३२ ॥

यन्त्रवेधविधिना ध्रुवोन्नतिर्या नतिश्च भवतोऽक्षलम्बकौ । तौ क्रमाद्विषुवदह्नयहर्दले येऽथवा नतसमुन्नता लवाः ॥३३॥

यन्त्रवेधद्वारा ध्रुवनक्षत्रकी उन्नति और नति जाननेपर वह उस स्थानका अक्ष और लम्ब होता है । अथवा विषुवद्गत सूर्य्यके मध्याह्नमें उन्नति और नतिद्वारा स्वदेशीय लम्ब और अक्ष निर्णय किया जाता है ॥ ३३ ॥

उन्नतं द्युनिशमण्डले कुजात्सावनं द्युतिविधौ हि तज्ज्यका । तिर्य्यगक्षवशतोऽक्षकर्णवच्छेदको न तु नरः स लम्बवत् ॥ ३४ ॥

द्युरात्रमण्डलमें क्षितिज मण्डलसे उन्नत काल सावन होता है-ग्रहगण की छायाज्ञानमें उनका व्यवहार होता है। तिर्यक् अक्षवशतः अक्षकर्णकी नाईं सरल नहीं होता ॥ ३४ ॥

चन्द्रप्रभार्थमसकृद्विधिनोदितं यत्कैश्चित्कृतं खलु न सत्तदसावनत्वात्। जानन्ति ये न निपुणं गणितं सगोलं तेषां नु तन्त्रकरणव्यसनं वृथैव ॥ ३५ ॥

असकृत् विधिद्वारा उदितसे कोई २ चन्द्रप्रभा निश्चय करता है, किन्तु सो ठीक नहीं कारण यह है कि, वह सावन नहीं है जो लोग गोल और गणितमें निपुण नहीं हैं उनकी तन्त्रशास्त्र करनेकी इच्छा करनी व्यर्थ है ॥ ३५ ॥

दृष्टिमण्डलभवा लवाः कुजादुन्नता गगनमध्यतो नताः। शंकुरुन्नतलवज्यका भवेद्दृग्गुणश्च नतभागशिञ्जिनी ३६॥

दृमङ्ण्डलगतक्षितिजसे उन्नतअंशही उन्नति और गगनमध्यसे अंशही नत है। शंकु उन्नतांशकी ज्या एवं दृग्ज्या नतांशकी ज्या है॥ ३६ ॥

भास्करेऽत्र सममण्डलोपगे यो नरः स समशंकुरुच्यते। कोणशंकुरथ कोणवृत्तगे मध्यशंकुरिति दक्षिणोत्तरे ॥ ३७ ॥

सूर्य्य जब सब सममण्डलमें आता है तो जो शंकु गणित होता है वह कोण शंकु है दक्षिणउत्तरवृत्त गत समयके शंकुको मध्यशंकु कहते हैं ॥३७॥

कुपृष्ठगानां कुदलेन हीनं दृङ्मण्डलार्धे खचरस्य दृश्यम्। कुच्छन्नलिप्तानुरतो विशोध्याः स्वभुक्तितिथ्यंशमिताः प्रभार्थम् ॥ ३८ ॥

खचरका कुदलहीन दृङ्मण्डलार्द्धकुपृष्ठगत मनुष्यकर्तृक दृष्ट होता है। अतएव पृथिवी कर्तृक आच्छन्न कला घटानी पडती है। अर्थात् ग्रहभुक्तिके १५ भाग वियोग करके प्रभा गणना करनी चाहिये ॥ ३८ ॥

क्ष्माजेद्युरात्रसममण्डलमध्यभाग-जीवाग्रका भवति पूर्व-पराशयोः सा। अग्राग्रयोः प्रगुणमत्र निबद्धसूत्रं यत् तद्व-दन्ति गणका उदयास्तसूत्रम् ॥ ३९ ॥

क्षितिजमहामण्डलमें द्युरात्रमण्डल सममण्डलके अन्तरमें जो ज्या रहती है

उसको अग्रा कहते हैं, वह पूर्व और पश्चिमकी ओर रहती है । अग्राग्रसंयुत सूत्र (रेखा) को गणक लोग उदयास्त सूत्र कहते है ॥ ३९ ॥

सूत्राद्दिवाशंकुतलं यमाशां याम्यां गतं हि द्युनिशं कुजोर्ध्वे । अधश्च सौम्यां निशि सौम्यमस्मात्सद्युक्तियुक्तं नृतलं निरुक्तम् ॥ ४० ॥

शंकुतल सूत्रसे दक्षिण ओर रहता है, कारण यह है कि, द्युनिशावृत्त दक्षिणकी ओर क्षितिजसे ऊपर अवस्थान करता है । रात्रिमें उत्तरकी ओर रहनेसे शंकुतल सूत्रके उत्तरमें अवस्थान करता है इस प्रकार शंकुतल कहा गया है ॥ ४० ॥

सौम्याग्रकाग्रान्नृतलं हि याम्यं याम्याग्रकाग्रात्पुनरेव याम्यम् । तदन्तरैक्यं समवृत्तखेटमध्यांशजीवां भुवि बाहुमाहुः ॥४१॥

उत्तर दिशा अग्राग्र होनेपर शंकुतल दक्षिणकी ओर, दक्षिण दिशामें अग्राग्र होनेपरभी दक्षिण दिशामें रहता है, उन सबकी एकताके अन्तरका नाम बाहु है । यह क्षितिजके ऊपर सममण्डल और ग्रहस्थानकी अन्तर ज्या है ॥ ४१ ॥

दृग्ज्यां श्रुतिं चाथ तयोस्तु कोटिं पूर्वापरां वर्गवियोगमूलम् । क्षेत्राणि वक्ष्येऽपमसम्भवानि संक्षेपतोऽक्षप्रभवाणि चातः ॥ ४२ ॥

दृग्ज्याको कर्ण ग्रहण करके बाहुज्या वर्ग वियोग करके पूर्व पश्चिमगत कोटी निर्णय करना चाहिये, अपमजनित क्षेत्र सब कहकर संक्षेपमें अक्षभागत क्षेत्र सब वर्णन करना चाहिये ॥ ४२ ॥

भुजोऽपमः कोटिगुणो द्युजीवा कर्णस्त्रिभज्या त्रिभुजेऽपमोत्थे । मेषादिजीवाःश्रुतयोऽपवृत्ते तद्भूमिजे क्रान्तिगुणा भुजाःस्युः४३ तत्कोटयःस्वद्युनिशाख्यवृत्ते व्यासार्धवृत्ते परिणामितानाम् । चापेषु तासामसवस्ततो ये तेऽधो विशुद्धा उदया निरक्षे ॥४४॥

अपमगत त्रिभुजमें अपम भुज, द्यु ज्याकोटि त्रिराशिकी ज्या ही कर्ण है । अपमवृत्त मेष आदिकी ज्या कर्ण भूमिजरेखामें (उन्मण्डल) क्रान्ति ज्या भुज, स्वीय द्युरात्रवृत्तमें उसकी कोटी । व्यासार्द्ध वृत्तमें परिणत करके उसके

धनुका निश्चय करनेपर निरक्ष देशका उदय प्राण होगा, दो राशिके प्राणसे वियोग करनेपर द्वितीय और तृतीय राशिके प्राणसे द्वितीय राशिका प्राण वियोग करनेपर द्वितीयका प्राण होगा ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

भुजोऽक्षभा कोटिरिनांगुलो ना कर्णोऽक्षकर्णस्त्रिभुजं यथेदम् । तथाक्षलम्बौ भुजकोटिरूपौ त्रिज्या श्रुतिर्दक्षिणसौम्यवृत्ते ॥ ४५ ॥

अक्षभाभुज, कोटि, १२ अंगुलि, कर्ण, अक्षकर्ण इसप्रकार त्रिभुज अथवा अक्ष ज्या और लम्बज्या भुज और कोटि त्रिज्या ही कर्ण यह त्रिभुज दक्षिण सौम्यवृत्तमें अवस्थित हैं ॥ ४५ ॥

उन्मण्डले प्रागपरोत्थसूत्रात् क्रान्तिज्यका कोटिरथ द्युरात्रे । कुज्या भुजोऽग्रा क्षितिजे च कर्णः क्षेत्रं तथेदं त्रिभुजं प्रसिद्धम् ॥ ४६ ॥

पूर्वापर सूत्रसे उन्मण्डलमें स्थित क्रान्तिज्याको कोटि द्युरात्रिस्थित कुज्याभुज, क्षितिजस्थित अग्रा कर्ण यह त्रिभुज क्षेत्र प्रसिद्ध हैं ॥ ४६ ॥

अग्रा भुजः स्वे समना च कोटिर्द्युरात्रके तद्धृतिरत्र कर्णः । भुजोऽपमज्या समना च कर्णः कुज्योनिता तद्धृतिरेव कोटिः ॥ ४७ ॥

अग्राभुज, समशंकु कोटि द्युरात्रवृत्तमें वह वृत्तकर्ण है अथवा अपमज्या भुज समशंकु कर्ण उस वृत्तसे कुज्या वियोग कर कोटि होगी ॥ ४७ ॥

उद्वृत्तना दोरपमः श्रुतिः स्यादग्रादिखण्डं खलु तत्र कोटिः । उद्वृत्तना कोटिरथाग्रकाग्रखण्डं भुजस्तच्छ्रवणः क्षितिज्या ॥ ४८ ॥

उन्मण्डलगत शंकुभुज अपम श्रुति अग्रा आदि खण्डा ही कोटि है । उन्मण्डल गत शंकुकोटि अग्राग्र खण्डभुज और क्षितिज्या कर्ण है ॥ ४८ ॥

कोटिर्नरः शंकुतलं च बाहुश्छेदः श्रुतिस्त्र्यस्रसहस्रमेवम् । उत्पाद्य सद्यः स्फुटगोलविद्भिश्छात्राय शास्त्रं प्रतिपादनीयम् ॥ ४९ ॥

शंकुकोटि शंकुतलबाहु छेदकर्ण इसप्रकार हजार २ त्रिभुज करके गोल-वित् पण्डित छात्रोंको समस्त प्रतिपादन करेंगे ॥ ४९ ॥ *

इति श्रीभास्करीये गोलाध्याये त्रिप्रश्नवासना ।

पश्चाद्भागाज्जलदवदधः संस्थितोऽभ्येत्य चन्द्रो
भानोर्बिम्बं स्फुरदसितया छादयत्यात्ममूर्त्या ।
पश्चात् स्पर्शो हरिदिशि ततो मुक्तिरस्यात एव
क्वापिच्छन्नः क्वचिदपिहितो नैष कक्षान्तरत्वात् ॥ १ ॥

मेघकी नाई निम्नस्थित चन्द्रमा पश्चिम दिशासे सूर्य्यके बिम्बमें प्रवेश करता हुआ अपनी कृष्णवर्णमूर्तिद्वारा आच्छादन करता है,इस कारण सूर्य्य-ग्रहणमें पश्चिमकी ओर स्पर्श और पूर्वकी ओर मोक्ष होता है । अक्षान्तर वशतः किसी स्थानमें आच्छन्न और किसी स्थानमें उदित होनेपर भी अना-च्छन्नदृष्ट होता है ॥ १ ॥

पर्वान्तेऽर्के नतमुडुपतिच्छन्नमेव प्रपश्येत्
भूमध्यस्थो न तु वसुमतीपृष्ठनिष्ठस्तदानीम् ।
तद्दृक्सूत्राद्धिमरुचिरधो लम्बितोऽर्कग्रहेऽतः
कक्षाभेदादिह खलु नतिर्लम्बनं चोपपन्नम् ॥ २ ॥

भूमध्यस्थ व्यक्ति नत और सूर्य्यको पर्व्वान्तमें आच्छन्न देख सकते हैं, किन्तु पृथिवी पृष्ठस्थ व्यक्ति जिस समय उसका दृक्सूत्रसे चन्द्रमाको अधो-भागमें लक्षितवशतः उस प्रकार नहीं दीखता, अतएव कक्षाभेदवशतः नति और लम्बनकी आवश्यकता होती है ॥ २ ॥

समकलकाले भूभा लगति मृगांके यतस्तया म्लानम् ।
सर्वे पश्यन्ति समं समकक्षत्वान्न लम्बनावनती ॥ ३ ॥

---

* ३६ से ४६ तक कई एक श्लोकोंमें भास्कराचार्य्यने कतिपय संज्ञा और गणितागत निर्देश निर्णय किया है । ये स्पष्टतया समझनेमें पाठक महोदय गोल रचना करेंगे । आकाश मध्यबिन्दु और ग्रहस्थान होकर जो वृत्त क्षितिजवृत्तमें तिर्यक् भावसे मिली है उसको दृङ्-मण्डल कहते हैं । उस वृत्तमें ग्रहका क्षितिज और नभोमध्यबिन्दुसे भिन्नताका नाम उन्नति और नति है । उन्नतिकी ज्याका नाम शंकु और नतिकी ज्याका नाम दृग् ज्या है । सम कोणद्वय और याम्योत्तर वृत्तमें आनेसे जो शंकु होता है, वही सम है । कोण और मध्य शंकु कहां कहां विख्यात है ।

समकालमें (जिस समय सूर्य्य और चन्द्रमाके स्फुटकी कला समान होती है) भूच्छायाद्वारा आवृत्त होकर चन्द्रमा म्लान होता है, उस समय सकल प्रदेशस्थ व्यक्ति समान देखते हैं, कारण यह है जो समकक्षा वशात् लम्बन अवनति नहीं होती ॥ ३ ॥

पूर्वाभिमुखो गच्छन्कुच्छायान्तर्यतः शशी विशति ।
तेन प्राक् प्रग्रहणं पश्चान्मोक्षोऽस्य निःसरतः ॥ ४ ॥

चन्द्रमा पूर्वकी ओर चलता २ पृथिवीकी छायामें प्रवेश कर जाता है इस कारण चन्द्रग्रहणकालमें चन्द्रमण्डलके पूर्व हिस्सेमें पहिले म्लान होता है और पश्चिम प्रदेशमें मोक्ष होता है (भूच्छाया चन्द्रमाकी अपेक्षा स्वल्पगामी है । अतएव दोनों गत्यन्तर ही इस समय दृश्यमान गति है) ॥ ४ ॥

भानोर्बिम्बपृथुत्वादपृथ्व्याः प्रभा हि सूच्यग्रा ।
दीर्घतया शशिकक्षामतीत्य दूरं बहिर्याता ॥ ५ ॥

सूर्य्यके विम्बके स्थूलत्ववशात् और पृथिवीकी स्वल्पतावशतः प्रभा (छाया) सूईकी नोंककीसी दीर्घता हेतु चन्द्रकक्षाकेभी बाहिर्देशमें अति दूर पर्य्यन्त स्थित हुई है [पृथिवीसे सूर्य्यके दूरत्वको पृथिवीके विम्बार्द्धद्वारा गुणनकर सूर्य्यभी पृथिवीके विम्बार्द्धके अन्तद्वारा भाग करनेपर पृथिवीसे कितनी दूरमें सूच्यग्र अवस्थित है—सो ज्ञात होता है] ॥ ५ ॥

अनुपातात् तद्दैर्घ्यं शशिकक्षायां च तद्बिम्बम् ।
भूभेन्दोरन्यदिशि व्यस्तः क्षेपः शशिग्रहे तस्मात ॥ ६ ॥

इसका दैर्घ्य अनुपातद्वारा ज्ञात हो जाता है, चन्द्रकक्षामें अनुपात द्वारा उसका विम्ब निर्देश करना चाहिये । भूच्छाया जब चन्द्रमाका क्षेप दक्षिण और उत्तर चन्द्रमाके उत्तर और दक्षिणमें अवस्थित वशात् इस क्षेपमें क्षेप विपरीत भावसे ग्रहण करना चाहिये ॥ ६ ॥

छादकःपृथुतरस्ततो विधोरर्धखण्डिततनोर्विषाणयोः ।
कुण्ठता च महती स्थितिर्यतो लक्ष्यते हरिणलक्षणग्रहे॥७॥

अर्द्धग्रस्त चन्द्रमाका दोनों कोण बडा कहकर चन्द्रग्रहणकी स्थिति काल-वशतः चन्द्रमा छादक चन्द्रमाकी अपेक्षा स्वल्प होता है ॥ ७ ॥

अर्द्धखण्डिततनोर्विषाणयोस्तीक्ष्णता भवति तीक्ष्णदीधितेः । स्यात् स्थितिर्लघुरतो लघुः पृथक् छादको दिनकृतोऽवगम्यते ॥ ८ ॥

अर्द्धग्रस्त सूर्य्यके दोनों कोण तीक्ष्ण होते एवं स्थितिकाल अत्यल्प कम होकर सूर्य्यका आच्छादक चन्द्रमाके छादककी अपेक्षा क्षुद्र होता है ॥ ८ ॥

दिग्देशकालावरणादिभेदान्न च्छादको राहुरिति ब्रुवन्ति । यन्मानिनः केवलगोलविद्यास्तत् संहितावेदपुराणबाह्यम् ॥ ९ ॥

दिशा, देश, काल और आवरणके प्रभेदवशतः राहु छादक कहकर केवल गोलविद् लोग मानना चाहते हैं । यह वेद संहिता और पुराणसे विरुद्ध वाक्य है ॥ ९ ॥

राहुः कुभामण्डलगः शशांकं शशांकगश्छादयतीनबिम्बम् । तमोमयः शम्भुवरप्रदानात् सर्वागमानामविरुद्धमेतत् ॥ १० ॥

शम्भु प्रदत्त वरके बलसे राहु पृथिवीकी छायामण्डलमें प्रवेश करके चन्द्रमाको, और चन्द्रमा प्रवेश पूर्व्वक सूर्य्यको आच्छादन करता है । एवं केवल बिम्ब आच्छादन नहीं करता, इस प्रकार समझनेसे आगम विरुद्ध नहीं होगा ॥ १० ॥

यतः कुर्ध्वोच्छ्रितो द्रष्टा चन्द्रं पश्यति लम्बितम् ।
साध्यते कुदलेनातो लम्बनं च नतिस्तथा ॥ ११ ॥

पृथिवी पृष्ठस्थ द्रष्टा चन्द्रमाको लम्बित दर्शन करके लम्बन और नति पृथिवीके आधे द्वारा गणित होता है ॥ ११ ॥

इष्टापवर्तितां पृथ्वीं कक्षे च शशिसूर्य्ययोः ।
भित्तौ विलिख्य तन्मध्ये तिर्य्यग्रेखां तथोर्ध्वगाम् ॥ १२ ॥

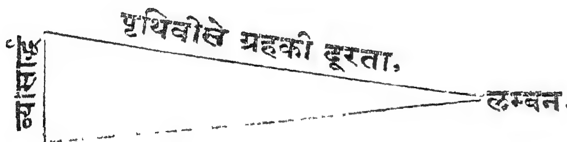
एकभित्तिमें उपयुक्त मानद्वारा पृथिवी अङ्कित करके चन्द्रमा और सूर्य्यकी कक्षा रचना करे, उसमें तिर्य्यग् और ऊर्ध्व रेखा बनावे ॥ १२ ॥

तिर्य्यग्रेखायुतो कल्प्यं कक्षायां क्षितिजं तथा ।
ऊर्ध्वरेखायुतौ खार्धं दृग्ज्याचापांशकैर्नतौ ॥ १३ ॥

कृत्वार्केन्दू समुत्पात्तिं लम्बनस्य प्रदर्शयेत्।
एकं भूमध्यतः सूत्रं नयेच्चण्डांशुमण्डलम् ॥ १४ ॥
द्रष्टुर्भूपृष्ठगादन्यद्दृष्टिसूत्रं तदुच्यते।
कक्षायां सूत्रयोर्मध्ये यास्ता लम्बनलिप्तिकाः ॥ १५ ॥

तिर्यग् रेखायुक्त कक्षास्थल क्षितिजमें अवस्थित है। ऊर्ध्वरेखागत दोनों कक्षास्थान आकाश मध्यस्थल है। दृङ्मण्डलगत नतधनुके अंशगत करके चन्द्रमा और सूर्य्यके लम्बन दिखलावे। एक रेखा भूमध्यसे सूर्य्यमण्डलपर्य्यन्त रचना करे, और अन्यरेखा भूपृष्ठगत स्थानसे सूर्य्यपर्य्यन्त अंकन करे (यह दृष्टि सूत्र) इन्हीं दोनोंके मिलनगत कक्षा स्थित कोणको लम्बन कला कहते हैं ×॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥

गर्भसूत्रे सदा स्यातां चन्द्रार्कौ समलिप्तिकौ।
दृक्सूत्राल्लम्बितश्चन्द्रस्तेन तल्लम्बनं स्मृतम् ॥ १६ ॥



पृथिवी व्यासार्द्ध÷लम्बन=ग्रहसे पृथिवीकी दूरता÷दृग्ज्या अतएव लम्बन=दृग्ज्या×व्यासार्द्ध÷दूरत्व। दृग्ज्या बृहत्तम होनेपर परमलम्बन निर्दिष्ट होगा। अतएव लम्बन=परमलम्बन+दृग्ज्या (यहां त्रिज्या)=१, इस निर्धारणस्थलमें पृथिवी मध्यसे और दृष्टसे दूरत्वका पार्थक्य अतिसामान्य वशतः छोड़दिया गया है भूगर्भगतसूत्रमें सब समयमें चन्द्रमा और सूर्य्य अपने स्थानमें दीख पडेंगे दृक्सूत्रसे चन्द्रमालम्बित अर्थात् निम्नगत कहकर दृष्ट होगा इसलिये लम्बन कहा गया है ॥ १६ ॥

दृग्गर्भसूत्रयोरैक्यात् खमध्ये नास्ति लम्बनम्।
अथ याम्योत्तरायां तु भित्तौ पूर्वोक्तमालिखेत् ॥ १७ ॥

आकाशमध्यस्थित होनेपर दृक्सूत्र और गर्भसूत्र एक कहकर लम्बन नहीं। याम्योत्तरगतभित्तिमें पूर्वोक्त प्रकार ग्रहादि लिखना चाहिये ॥ १७ ॥

× साधारण त्रिकोण भित्तिके नियमानुसार लम्बन कोण निर्णय हो सकता है।

ये कक्षामण्डले तत्र ज्ञेये दृक्क्षेपमण्डले ।
त्रिभोनलग्नदृग्ज्या या स दृक्क्षेपो द्वयोरपि ॥ १८ ॥
तच्चापांशैर्नतौ बिन्दू कृत्वा वित्रिभसंज्ञकौ ।
तल्लम्बनकलाः प्राग्वज्ज्ञेयास्ता नतिलिप्तिका ॥ १९ ॥

इसमें जो सब बातें लिखी जावेंगी, वह दृक्क्षेप मण्डलमें लिखना चाहिये। दोनोंका वह दृक्क्षेप होगा । दशम लग्नकी दृग्ज्या निर्णय करके उसके धनुद्वारा दोनों नत बिन्दु स्थिर करके लम्बन कला निर्णय करनेपर नतिकला होगी ॥ १८ ॥ १९ ॥

कक्षयोरन्तरं यत् स्याद्वित्रिभे सर्वतोऽपि तत् ।
याम्योत्तरं नतिः सात्र दृक्क्षेपात् साध्यते ततः ॥ २० ॥

द्वित्रिभमें दोनों कक्षाका जो अन्तर हो सर्वत्रही उसी प्रकार इस कारण याम्योत्तर नाति दृक् क्षेपसे साधन करना चाहिये ॥ २० ॥

यत्र तत्र नतादर्कादधश्चन्द्रावलम्बनम् ।
तद्दृग्वृत्तेऽन्तरं चन्द्रभान्वोः पूर्वापरं तु तत् ॥ २१ ॥

सूर्य्यसे निम्नभागमें चन्द्रमा जितनी दूर लम्बित चाहे क्यों न हो, वह दृक् वृत्तसे चन्द्रमा और सूर्य्यके पूर्वापर अन्तर है ॥ २१ ॥

पूर्वापरं च याम्योदग्जातं तेनान्तरद्वयम् ।
अत्रापमण्डलं प्राची तत्तिर्य्यग्दक्षिणोत्तरा ॥ २२ ॥

इसलिये पूर्वापर और उत्तर दक्षिण दो प्रकारका अन्तर होता है, अपमण्डल पूर्वापर दक्षिणोत्तरमण्डल तिर्यक् होता है ॥ २२ ॥

यत् पूर्वापरभावेन लम्बनाख्यं तदन्तरम् ।
यद्याम्योत्तरभावेन नतिसंज्ञं तदुच्यते ॥ २३ ॥

जो पूर्वापरभावसे अवस्थित है । उस अन्तरका नाम लम्बन है, जो उत्तर दक्षिण भावसे है, उसकी नाति संज्ञा है ॥ २३ ॥

नतिलिप्ता भुजः कर्णो दृग्लम्बनकलास्तयोः ।
कृत्यन्तरपदं कोटिः स्फुटलम्बनलिप्तिकाः ॥ २४ ॥

नति, कला, भुज, कर्ण दृक्लम्बन इन दोनोंका वर्गान्तरका मूल कोटी है वही स्पष्ट लम्बन है ॥ २४ ॥

परलम्बनलिप्ता ४८/४६ घ्नी त्रिज्याप्ता रविदृग्ज्यका।
दृग्लम्बनकलास्ताः स्युरेवं दृक्क्षेपतो नतिः ॥ २५ ॥

परमलम्बनको सूर्य्य दृग्ज्याद्वारा गुणनकर त्रिज्यासे भाग देवे, भागफल दृग् लम्बन होगा दृक्क्षेपसे नति होगी ॥ २५ ॥

गत्यन्तरस्य तिथ्यंशः परलम्बनलिप्तिकाः ४८/४६।
गतियोजन ११८५९/४ तिथ्यंशः कुदलस्यः ७९०/१५ यतो मितिः २६॥

गत्यन्तरका पन्द्रहवां भाग परम लम्बन कला है, कारण यह है जो, गति योजनके १५ अंशही पृथिवीके व्यासार्द्धका परिमाण है ॥ २६ ॥

स्युर्लम्बनकला नाड्यो गत्यन्तरलवोद्धृताः।
प्रागग्रतो रवेश्चन्द्रः पश्चात् पृष्ठेऽवलम्बितः ॥ २७ ॥

स्वलम्बन कलाको गतिके अन्तरांशसे भागकर अन्तर दण्ड आदि निर्णय करे। चन्द्रमा (मध्याह्नका) पहिले हो तो अग्रभागमें नहीं तो दूसरी ओर लम्बित होता है ॥ २७ ॥

शीघ्रेऽग्रगे युतिर्याता गम्या पृष्ठगते यतः।
प्राग्गृणं तद्धनं पश्चात् क्रियते लम्बनं तिथौ ॥ २८ ॥

आगे होनेपर युति पहिले हुई है, और पश्चात् होनेपर पीछे होगी। कारण यह है जो गति अति शीघ्र है, इस लिये पूर्व होनेपर वियोग और पश्चात् होनेपर दण्डआदि लम्बन तिथिमें (अमावास्याके अन्तमें) योग करना चाहिये ॥ २८ ॥

याम्योत्तरं शरस्तावदन्तरं शशिसूर्य्ययोः।
नतिस्तथा तथा तस्मात् संस्कृतः स्यात् स्फुटः शरः॥२९॥

चन्द्रमा और सूर्य्यके उत्तर दक्षिणगत पार्थक्यका नाम 'शर' है। तादृश नतिही इस लिये उस संस्कारके करनेपर स्पष्ट शर होता है ॥ २९ ॥

तुलाजाद्योर्हि संपाते विषुवत्क्रान्तिवृत्तयोः।
स्यातां याम्योत्तरं भिन्ने परक्रान्त्यन्तरे च ते ॥ ३० ॥

तुला और मेष राशिकी आदिबिन्दुमें विषुवत और क्रान्ति वृत्तके सम्पात स्थानमें दोनोंका याम्योत्तर वृत्त पर क्रान्ति वृत्तमें अवस्थित है ॥ ३० ॥

आयनं वलनं तत्र जिनांशज्यासमं ततः।
एकैवायनसन्धौ तु तयोः स्याद्दक्षिणोत्तरा ॥ ३१ ॥

वहां आयन वलन २४ अंशकी ज्याके तुल्य है। किन्तु अयन सन्धिस्थानमें दक्षिणोत्तर दोनों रेखा—एक है ॥ ३१ ॥

एकैव तद्वशात् प्राची तत्र नो वलनं ततः।
तदन्तरेऽनुपातेन खेटकोटिक्रमज्यका ॥ ३२ ॥
जिनज्याघ्नी द्युजीवाप्तायनदिग्वलनं भवेत्।
एवमेव हि सम्पाते विषुवत्समवृत्तयोः ॥ ३३ ॥

इस कारण एक कहकर वहां वलन नहीं होता। इन ४ स्थानोंको छोड़-कर अन्यस्थानोंमें (विषुवत् क्रान्ति सम्पात और अयन सन्धिके मध्यवर्त्ती-स्थानमें) अनुपात द्वारा अथवा ग्रहस्फुटके कोटीको २४ अंशके ज्या द्वारा गुनकर गुणनफलको द्युज्या द्वारा भाग करनेपर (अयन) वलन होगा। विषुवत् और समवृत्तके सम्पातमें इस प्रकार होता है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

उन्मण्डलं भवेत्तत्र विषुवद्दक्षिणोत्तरा।
क्षितिजं समवृत्तस्य पलज्या च तदन्तरम् ॥ ३४ ॥

उस समय उन्मण्डल विषुवत् वृत्तके और क्षितिज समवृत्तके दक्षिणोत्तर वृत्त इन सबके अन्तर पलज्याके तुल्य है ॥ ३४ ॥

क्षितिजेऽक्षज्यया तुल्यामक्षजं वलनं ततः।
तयोरेकैव याम्योदङ्न मध्ये वलनं ततः ॥ ३५ ॥

क्षितिज वृत्तमें अक्षज्या तुल्या अक्षवलन, दिनमें दो प्रहरको दोनोंकी साम्यता वशतः कोई वलन नहीं दीख पड़ता ॥ ३५ ॥

नतक्रमज्यया साध्यमन्तरे त्वनुपाततः।
नतं खांकाहतं भक्तं द्युदलेनाप्तभागकैः ॥ ३६ ॥

इन दोनोंके नतज्याके अनुसार अनुपातद्वारा अक्षवलन निर्णय करे। नत कालको ९० अंशद्वारा दिवामानके आधेसे भाग करनेपर नतांश होगा ॥३६॥

क्रमज्याक्षज्यया क्षुण्णा द्युज्याभक्ताक्षजं भवेत्।
प्राक् सौम्यं पश्चिमे याम्यं तच्चापैक्यान्तरात् स्फुटम् ३७॥

नतज्याको अक्षज्यासे गुणनकर द्युज्याद्वारा भाग करनेपर अक्षवलन होगा। नत पूर्वमें होनेपर वलन उत्तरमें होगा। पश्चिममें होनेपर दक्षिणमें

होगा। इन दोनोंसे वलनके धनुके योग और अन्तरफलसे स्पष्ट वलन होगा। (एक दिशामें होनेपर योग अन्यथा वियोग होगा) ॥ ३७ ॥

एवमेव च सम्पातो यः क्रान्तिसमवृत्तयोः ।
परमं तत्र तत्कालवलनैक्यान्तरं स्फुटम् ॥ ३८ ॥

समवृत्त और क्रांति सम्पातमें स्पष्ट वलन दोनों लम्बनका योग या वियोग जात होकर परमत्वको प्राप्त होता है ॥ ३८ ॥

अग्रतः पृष्ठतस्तस्मात् क्रान्तिवृत्ते त्रिभेऽन्तरे ।
तयोर्याम्योत्तरैकत्वात् तत्र नो वलनं स्फुटम् ॥ ३९ ॥

किन्तु संपात स्थानके आगे या पीछे तीन राशिदूरमें उनकी याम्योत्तरकी एकतामें स्पष्ट वलन नहीं होता ॥ ३९ ॥

न स्पष्टवलनाभावस्तत्र स्यादुत्क्रमज्यया ।
क्रमज्यया ततः कार्य्यं दार्ढ्यार्थं कथ्यते पुनः ॥ ४० ॥

उत्क्रम ज्याद्वारा स्पष्ट वलनका अभाव दिखानेपर कृतकार्य्य नहीं होसकता, इस कारण क्रमज्याही प्रशस्त है, यह पुनः दृष्टार्थ कहा गया ॥ ४० ॥

सर्वतः क्रान्तिसूत्राणां ध्रुवे योगो भवेद्यतः ।
विषुवन्मण्डलप्राच्या ध्रुवे याम्या तथोत्तरा ॥ ४१ ॥

क्रान्ति सूत्र सब ध्रुव स्थानमें मिलता है, इस कारण विषुवन्मण्डलके याम्योत्तर वृत्त सब ध्रुवमें मिलता है ॥ ४१ ॥

सर्वतः क्षेपसूत्राणां ध्रुवाज्जिनलवान्तरे ।
योगः कदम्बसंज्ञोऽयं ज्ञेयो वलनबोधकृत् ॥ ४२ ॥

विक्षेपसूत्र सब ध्रुवसे २४ अंश दूरपर मिलता है। उस योगस्थानको कदंब कहते हैं, वह वलन निर्णय करनेवाला है ॥ ४२ ॥

तत्रापमण्डलप्राच्या याम्या सौम्या च दिक् सदा ।
कदम्बभ्रमवृत्तं च बध्नीयात् परितो ध्रुवात् ॥ ४३ ॥

पूर्वापरगामी अपमण्डल रेखामें उत्तरदक्षिणगामी वृत्तमें सदाही कदंब स्थित रहता है। अतएव ध्रुवसे २४ अंश दूरपर एक कदंब भ्रम वृत्त रचना करे उसमें कदंबान्वित होगा ॥ ४३ ॥

गोले तु जिनतुल्यांशैस्तत्र ज्या क्रान्तिशिञ्जिनी ।
सर्वतः समवृत्ताच्च याम्योदक्कुजसंगमे ॥ ४४ ॥

तात्तिर्य्यग्गतसूत्राणां योगः स समसंज्ञकः ।
समध्रुवकदम्बानामुपरि द्युचरान्नयेत् ॥ ४५ ॥
सूत्राणि वृत्तरूपाणि वलनानि तदन्तरे ।
अक्षजं वलनं मध्ये स्यात् समध्रुवसूत्रयोः ॥ ४६ ॥
कदम्बध्रुवसूत्रान्तरायनं च त्रिभे ग्रहात् ।
कदम्बसमसूत्रान्तः स्फुटं सर्वदिशां च तत् ॥ ४७ ॥

उसकी ज्या क्रान्तिज्याके तुल्य है। समवृत्तके तिर्यक्वृत्त सब याम्योदक् वृत्त और क्षितिज रेखाके संयोगस्थानमें जहां मिलता है, उसको समवृत्त कहते हैं। ग्रहस्थानसे सम, ध्रुव और कदम्बगामी वृत्तोंको रचना करे इन वृत्तोंके अन्तरमें तीन प्रकार वलन स्पष्ट होंगे। समसूत्र और ध्रुवसूत्रके मध्यमें अक्ष वलन कदम्ब और नत सूत्रके मध्यमें अयन वलन और कदम्ब और समसूत्रक मध्यमें स्पष्ट वलन अवस्थित है, यह सब दिशाओंमें समान है ॥ ४४-४७ ॥

अथवा परितः खेटात् खांकभागान्तरे न्यसेत् ।
त्रिज्यावृत्तं ततस्तत्र विषुवत्समवृत्तयोः ॥ ४८ ॥

अथवा ग्रहसे ९० अंश दूरपर एक वृत्त अंकित करे। उस वृत्तमें विषुवत् और समवृत्तको अन्तरमें अक्षवलन देखे ॥ ४८ ॥

मध्येऽक्षवलनं विद्याद्विषुवत्क्रान्तिवृत्तयोः ।
अन्तरं चायनं क्रान्तिसमवृत्तान्तरे स्फुटम् ॥ ४९ ॥

विषुवत् और क्रान्तिवृत्तके अन्तरपर अयन वलन क्रान्ति और समवृत्तके अन्तरमें स्फुट वलन होगा ॥ ४९ ॥

तत्रापमण्डलं प्राची तस्या याम्योत्तरः शरः ।
वलनायने क्षेपो यैः क्षिप्तस्ते तु कुबुद्धयः ॥ ५० ॥

इस वृत्तमें अपमण्डल पूर्वापर रेखा शरही इसकी याम्योत्तर रेखा है। वलन लाने कहे समय क्षेप संस्कार जो लोग कहते हैं। वे लोग कुबुद्धि हैं ॥ ५० ॥

नक्रादिश्च कदम्बश्च स्यातां याम्योत्तरे समम् ।
आयनं वलनं तस्मान्नायनादौ प्रजायते ॥ ५१ ॥

मकरकी आदि और कदम्ब एकही याम्योत्तरमें स्थित हैं। इस कारण अयनकी आदिमें अयन वलन नहीं होता ॥ ५१ ॥

ततो भ्रमति गोले स मकरादिर्यथा यथा।
तथा तथा भ्रमत्येष कदम्बो निजमण्डले ॥ ५२ ॥

मकर आदि जिसप्रकार गोलमें भ्रमण करता है, कदम्ब अपने मण्डलमें उसीप्रकार भ्रमण करता है ॥ ५२ ॥

कुम्भादावथ मीनादौ याम्योदग्वलयस्थिते।
जायते वलनं तद्वत् सौम्यसूत्रकदम्बयोः ॥ ५३ ॥
अन्तरं शिञ्जिनीरूपं कदम्बभ्रममण्डले।
अयनाद्गतकालांशक्रमक्रान्तिज्यका हि सा ॥ ५४ ॥

जिस समय कुम्भ आदि और मीन आदि याम्योदक वृत्त गत होता है उस समय कदम्ब और सौम्यसूत्रके मध्यमें ज्यारूप कदम्ब भ्रम मण्डलमें वलन अवस्थित होता है। यह ज्या अयनकाल होनेपर आगतक्रान्ति ज्याके तुल्य होता है ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

उत्क्रमज्या यतो बाणः शिञ्जिनी तु क्रमज्यका।
मंत्रिभार्कोत्क्रमक्रान्तिज्यातो वलनमायनम् ॥ ५५ ॥

उत्क्रमज्या बाणकी नाईं, ज्या शिञ्जिनी तुल्य अतएव त्रिराशि युक्त सूर्य्य स्पष्टकी क्रांति ज्यामे वलन आनयन करे ॥ ५५ ॥

यैरुक्तमुत्क्रमक्रान्त्या भ्रान्त्या तैर्नाशितं हि तत्।
युक्त्यानयैव विज्ञेयमक्षजं च क्रमज्यया ॥ ५६ ॥

जो लोग उत्क्रमक्रान्ति द्वारा निर्धारण करने कहते हैं, वे लोग सर्व नाश करते हैं। इसप्रकार अक्षवलन क्रमज्या द्वारा निर्दिष्ट होता है। यह सिद्ध किया जा सकता है ॥ ५६ ॥

परोक्तेरन्यथा ब्रूयाद्यः परान् न प्रदूषयेत्।
तस्यैव दूषणं तद्धि न दोषोऽतोऽन्यदूषणे ॥ ५७ ॥

पूर्व शास्त्रकार लोग विरुद्ध कह गये, केवल ऐसा कहकर उनके दोषका प्रदर्शन नहीं करते वेही दूषणीय हैं। इसलिये ऐसे स्थानमें अन्यलोगोंका दोष दिखलानेसे दोष नहीं होता ॥ ५७ ॥

उत्क्रमज्यानिरासोऽयमन्यथा वाथ कथ्यते।
जिनांशैर्जिनवृत्ताख्यं कदम्बात् परितो न्यसेत् ॥ ५८ ॥

उत्क्रमज्या निराशके लिये अन्य प्रकारका प्रमाण कहा जाता है। कदम्बसे २४ अंश दूरमें जिनवृत्त नामक वृत्त रचना करे ॥ ५८ ॥

क्रान्तियाम्योत्तरं वृत्तं कदम्बद्वयकीलयोः ।
प्रोतं कृत्वा चलं न्यस्तं द्वन्द्वान्ते स्याद्ध्रुवोपरि ॥ ५९ ॥

क्रान्ति वृत्तके याम्योत्तर वृत्त दोनों कदम्बका निबन्ध कर वृत्तको भ्रमण करानेपर मिथुनान्तमें ध्रुवके ऊपर आवेगा ॥ ५९ ॥

द्वन्द्वांताच्चाल्यतेऽशैर्यैस्तैरेव चलति ध्रुवात् ।
जिनवृत्ततदंशानां तत्र ज्या क्रान्तिशिञ्जिनी ॥ ६० ॥
आयनं सैव वलनं द्युज्याग्रे जायते ग्रहात् ।
ग्रहध्रुवान्तरे यस्माद्द्युज्याचापांशकाः सदा ॥ ६१ ॥

मिथुनान्तसे जो कोई अंश चालित होता है,जिन वृत्तमें उस कई एक अंशकी ज्यावृद्धि क्रान्तिज्या वृद्धिके अनुपातमें दीखता है इस वलनको आयन वलन कहते है। यह ग्रहके द्युजाग्रमें अवस्थित है, कारण यह है कि ग्रहभी ध्रुवके अंतरमें द्युज्ज्या धनु सदाही वर्त्तमान रहता है ॥ ६० ॥ ६१ ॥

त्रिज्यावृत्ते यतो देयं तत्रातः परिणाम्यते ।
एवमक्षांशकैर्वृत्तं समाख्यात् परितो न्यसेत् ॥ ६२ ॥

त्रिज्यावृत्तमें परिमाण प्रदत्त होता है-कहकर उससे परिणत करना चाहिये इस प्रकार (जिनवृत्तकी नाई) समसे अक्षांशपरिमित दूरमें एकवृत्त रचना करना चाहिये ॥ ६२ ॥

समकीलकयोः प्रोतं तथा याम्योत्तरं चलम् ।
तत्तत्खेटोपरि न्यस्तं यैरंशैः खार्धतो नतम् ॥ ६३ ॥
समवृत्तेऽक्षवृत्ते च तैरेव स्यान्नतं ध्रुवात् ।
समवृत्तनतांशज्याक्षज्यापरिणताक्षजम् ॥ ६४ ॥

दोनों समविन्दुमें एक प्रोतभ्रमणकारी याम्योत्तरवृत्त रचना करे । वह वृत्त ग्रहके उपारिगत होनेपर समवृत्तमें मध्याकाशसे ग्रह जो कई अंश नत है वही कई एक अंश अक्षवृत्तमें ध्रुवसे नत दीख पड़ेगा॥६३॥६४॥

द्युज्याग्रे वलनं प्राग्वत् त्रिज्याग्रे परिणाम्यते ।
उपपत्त्यानया सम्यक् समवृत्तनतांशजम् ॥ ६५ ॥

वलनं स्यात् तथा वक्ष्ये स्वाहोरात्रनतादपि ।
अग्रानृतलयोर्योगः समदिक्त्वेऽन्यथान्तरम् ॥ ६६ ॥

द्युज्याग्रमें वलन जिस प्रकार परिणत करना पडता है यहांभी उसीप्रकर त्रिज्याग्रमें परिणत करना चाहिये । इस उपपत्तिद्वारा दिखाई पड़ना है जो समवृत्तमें नतांशसे वलन होगा ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

तत्त्रिज्यावर्गविश्लेषपदभक्ताक्षशिञ्जिनी ।
नता द्युदोर्ज्यया क्षुण्णा वलनं पलजं स्फुटम् ॥ ६७ ॥

यह स्वीय अहोरात्र नतमें निर्णय किया जा सकता है । समदिक् होनेपर अग्रा और शंकुतल योग अन्यथा वियोग करनेपर बाहु होगा ॥ ६७ ॥

नतं खांकाहतं भक्तं द्युदलेनाप्तभागकैः ।
क्रमज्याक्षज्यया क्षुण्णा स्थूलं वा द्युज्यया हृता ॥ ६८ ॥

यह बाहुवर्ग त्रिज्या वर्गसे वियोग करके जो होगा, उसके द्वारा नत प्राण द्युज्याद्वारा गुणन कर गुणलब्ध अक्षको भाग करनेपर अक्ष वलन होगा नतको ९० से गुणन करे दिनार्द्धद्वारा भाग करनेपर नतांश होगा । नतज्या अक्षज्याद्वारा गुणन कर गुणनफलमें द्युज्यासे भाग करनेपर स्थूल अक्ष वलन होगा ॥ ६८ ॥

द्युज्यावृत्तापवृत्तैक्ये न्यसेद्वा रविमण्डलम् ।
बिम्बाग्रे वलनं तद्यदन्तरं वृत्तयोस्तयोः ॥ ६९ ॥

रवि मण्डलको अपवृत्त और द्युज्या वृत्तके संयोग स्थानमें रखनेसे इन दोनोंके वृत्तके अन्तर स्थित बिम्बाग्रमें वलन दृष्ट होगा ॥ ६९ ॥

बिम्बान्तबिम्बमध्योत्थक्रान्तिमौर्व्योस्तदन्तरम् ।
अर्कदोर्भोग्यखण्डघ्नं बिम्बार्धं तत्त्वदस्रहृत ॥ ७० ॥
जिनज्याघ्नं त्रिभज्याप्तमेवं स्यादन्तरं हि तत् ।
बिम्बार्धहृत-त्रिभज्याघ्नमेवं त्रिज्यागतं भवेत् ॥ ७१ ॥

बिम्बान्त और बिम्बमध्यगत क्रान्तिज्याका अन्तर वलन । अर्क बाहुगत भोग खण्डद्वारा बिम्बार्द्ध गुणनकर २२५ से भाग करे । भाग फलको २४ अंश ज्याद्वारा गुणनकर त्रिज्याद्वारा भाग करनेपर उनका अन्तर होगा ।

पुनः त्रिज्याद्वारा गुणनकर बिम्बार्द्ध द्वारा भाग करनेपर त्रिज्या गत होगा ॥ ७० ॥ ७१ ॥

गुणहारकबिम्बार्धत्रिज्यानाशे कृते सति ।
भोग्यखण्डं जिनांशज्यागुणं तत्त्वाश्विभाजितम् ॥ ७२ ॥

गुण और हारक सूत्रमें बिम्बार्द्ध और त्रिज्या नष्ट होनेपर भोग्य खण्ड २४ अंशके ज्याद्वारा गुणनकर २२५ से भाग करना चाहिये ॥ ७२ ॥

सूत्रभार्कात् क्रमक्रान्तेस्तत् तुल्यं जायतेऽपि च ।
क्रमक्रान्तेरिदं वीक्ष्य भ्रान्तिं त्यजत बालिशाः ॥ ७३ ॥

त्रिराशियुक्त सूर्य्यसे क्रान्ति तुल्य वलन होना है । हे मूर्खगण ! क्रमक्रांति द्वारा वलन दर्शन करके भ्रम दूर करो ॥ ७३ ॥

नामितं छत्रवद्बिम्बं तिर्य्यक् क्रान्तिस्तु सा समा ।
अत्र द्युज्यानुपातो यस्तात्तिर्य्यक्करणाय सः ॥ ७४ ॥

छत्रकी नाईं बिम्ब नमित दीखता है, किन्तु क्रान्ति समवृत्तको तिर्यक्में है । द्युज्यानुपात तिर्यक् करनेके लिये निर्दिष्ट होता है ॥ ७४ ॥

यत् खस्वस्तिकगे रवौ भवलये दृग्वृत्तवत् संस्थिते
प्रत्यक्षं वलनं कुजे त्रिभयुतार्काग्रासमं दृश्यते ।
त्वं चेदुत्क्रमजीवया नयसि यत् तादृक् सखे गोलवित्-
मन्ये तर्ह्यमलं तदेव वलनं धीवृद्धिदाद्योदितम् ॥ ७५ ॥

क्रान्तिवृत्तमें आकाशमें सूर्य्य स्थित होनेपर क्षितिज वृत्तमें तीनराशियुक्त अर्काग्र सम वलन प्रत्यक्ष देखा जाता है । हे भाइयो ! इस प्रकारकी अवस्थामें उत्क्रमज्याद्वारा धीवृद्धिदोक्त मतानुसार निर्धारित वलन विशुद्ध जानकर अपनेको क्या गोलवित् जानने हो ? ॥ ७५ ॥

यत्राक्षोऽङ्गरसा लवादिनमणेस्तत्रोदयं गच्छतो मेषे वा
वृषभेऽपि वाप्यनिमेषे कुम्भे स्थितस्यापि वा । स्पर्शो
दक्षिणतस्तदा क्षितिजवत् स्यात् क्रान्तिवृत्तं यतस्तद्-
ब्रूह्युत्क्रमजीवयात्र वलनं व्यासार्धतुल्यं कथम् ॥ ७६ ॥

इति श्रीभास्करीये गोलाध्याये ग्रहणवासना ।

६६ अंश अक्षगत स्थानमें जिस समय सूर्य्य मेष वृषमें अथवा कुम्भमें उदय होता है, दक्षिणसे स्पर्श होता है, कारण यह है कि, उस कालमें क्रान्तिवृत्त क्षितिज वृत्तके तुल्य उत्क्रमज्याद्वारा इस स्थानमें व्यासार्द्ध तुल्य वलन किस प्रकार हुआ ॥ ७६ ॥

इति ग्रहणवासना ।

क्रान्तिवृत्तग्रहस्थानचिह्नं यदा स्यात् कुजे नो तदा खेचरोऽयं यतः । स्वेषुणोत्क्षिप्यते नाम्यते वा कुजात् तेन दृक्कर्म खेटोदयास्ते कृतम् ॥ १ ॥

क्रान्तिवृत्तमें ग्रहस्थानमें जिस समय क्षितिज मण्डलस्थ होता है, उस समय ग्रहका उदय नहीं होता । कारण यह है कि, शरद्वारा क्रान्तिवृत्तगतस्थानसे विक्षिप्त होकर क्षितिजवृत्तसे दूर स्थित होता है । इसी कारण उदयास्त कालमें दृक्कर्म्म संस्कार कहा गया है ॥ १ ॥

नैव बाणः कुजेऽसौ कदम्बोन्मुखस्तत्समुत्क्षेपणं नामनं च द्विधा । आयनं चाक्षजं तेन कर्मद्वयं तत्प्रपञ्चः पुनः संविविच्योच्यते ॥ २ ॥

ग्रहोंका शरकदम्बोन्मुख क्षितिजमें अवस्थित नहीं है इस कारण विक्षेप दोप्रकारका है एक आयन और दूसरा अक्षवलन है । इस समय यह विस्ताररूपसे विवेचित होगा ॥ २ ॥

क्षितिजे वलने ये स्तस्तद्वशादिषुणा ग्रहः ।
याम्येन नाम्यते क्ष्माजात् सौम्येनोन्नाम्यते तथा ॥ ३ ॥

ग्रहोंके शर याम्यमें रहनेसे उत्तरवलन वशतः क्षितिजमें निम्नगत और साम्य होनेपर उन्नत होता है ॥ ३ ॥

तद्वान्तं वलने याम्ये व्यस्तं प्रत्यक्कुजेऽप्यतः ।
आयनं त्रिज्यया चेत् स्यादस्पष्टेन शरेण किम् ॥ ४ ॥
लम्बज्यायाक्षजं चेत् स्याद्वलनं किं स्फुटेषुणा ।
इति त्रैराशिकाल्लब्धे त्रिज्याघ्ने द्युज्ययोद्धृते ॥ ५ ॥
तच्चापैक्यान्तरप्राणैः कुजात् खेटो नतोन्नतः ।
तैः प्राणैर्यत् क्रमाल्लग्नं नतात् खेटात् प्रजायते ॥ ६ ॥

वलन दक्षिणस्थ होनेपर किम्वा पश्चिम प्रदेश स्थित होनेपर विपरीत दीखता है त्रिज्याद्वारा आयन इसप्रकार होनेपर इस शरके कितना होगा ? लम्बज्या द्वारा अक्ष वलन होनेपर स्पष्ट शरद्वारा द्युज्याद्वारा भाग करनेपर उसके धनुका प्राण स्थिर करे । दोनें किम्वा वियोग फल अनुसार ग्रह क्षितिजसे नत किम्बा उन्नत स्थि तदनुसार लग्नकालसे वियोग किम्वा योग करनेपर ग्रहोदयार होगा ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥

उत्क्रमेणोन्नताद्यञ्च तद्ग्रहोदयलग्नकम् ।
उक्तव्यत्ययतः प्रत्यगस्तलग्नं सषड्ग्रहात् ॥ ७ ॥

विपरीतभावसे गणना द्वारा ग्रहोदयका लग्न स्थिर किया जाता है ६ राशियोग करनेपर अस्त लग्न निर्दिष्ट होगा ॥ ७ ॥

शरे महति भानां तु चरार्धं मध्यमापमात् ।
शरस्फुटात् तथा कृत्वा तच्चापैक्यान्तरासुभिः ॥ ८
विभिन्नैकदिशोर्विद्यादक्षजेन नतोन्नतम् ।
आद्यलाक्षजयोर्योगवियोगाल्लग्नमुक्तवत् ॥ ९ ॥

नक्षत्रोंके शरके अधिकारवशात् मध्य अवमसे चर निद्दश कर शरसे उसी प्रकार चर निर्धारण करे एवं दोनोंको योग वा वियोग (भिन्न हो तो योग अन्यथा वियोग करे) नत किम्वा उन्नत कम्मे गत प्राण निर्णीत होगा । आयन दृक्कर्म्म गत उक्त असु (प्रा वा वियोगसे पूर्ववत् लग्ननिर्णय होगा ॥ ८ ॥ ९ ॥

सत्रिराशिग्रहद्युज्यानिघ्नास्त्रिज्योद्धृतः शरः ।
स्फुटोऽसौ क्रान्तिसंस्कारे दृक्कर्मण्यक्षजे तथा ॥ १०

शरको त्रिराशियुक्त स्थानकी ज्यासे गुणन कर त्रिज्यासे भाग स्पष्ट शर होगा । क्रान्ति संस्कारमें एवं अक्ष दृक्कर्म्ममें यह स्प व्यवहृत होता है ॥ १० ॥

ब्रह्मगुप्तादिभिः स्वल्पान्तरत्वान्न कृतः स्फुटः ।
स्थित्यर्धपरिलेखादौ गणितागत एव हि ॥ ११ ॥

स्वल्पान्तर हेतु ब्रह्मगुप्त आदि स्पष्ट शरको दृक्कर्म्ममें व्यवह करते हैं । उनने स्थित्यर्द्ध और परिलेखादिमें यह गणितागत शर किया है ॥ ११ ॥

वलन दक्षिणस्थ होनेपर किम्वा पश्चिम प्रदेश स्थित होनेपर क्षितिज विपरीत दीखता है त्रिज्याद्वारा आयन इसप्रकार होनेपर इस शरके अनुसार कितना होगा ? लम्बज्या द्वारा अक्ष वलन होनेपर स्पष्ट शरद्वारा गुणनकर द्युज्याद्वारा भाग करनेपर उसके धनुका प्राण स्थिर करे । दोनोंका योग किम्वा वियोग फल अनुसार ग्रह क्षितिजसे नत किम्वा उन्नत स्थिर होगा तदनुसार लग्नकालसे वियोग किम्वा योग करनेपर ग्रहोदयास्त काल होगा ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥

उत्क्रमेणोन्नताद्यच्च तद्ग्रहोदयलग्नकम् ।
उक्तव्यत्ययतः प्रत्यगस्तलग्नं सषड्ग्रहात् ॥ ७ ॥

विपरीतभावसे गणना द्वारा ग्रहोदयका लग्न स्थिर किया जाता है । उसमें ६ राशियोग करनेपर अस्त लग्न निर्दिष्ट होगा ॥ ७ ॥

शरे महति भानां तु चरार्धं मध्यमापमात् ।
शरस्फुटात् तथा कृत्वा तच्चापैक्यान्तरासुभिः ॥ ८ ॥
विभिन्नैकदिशोर्विद्यादक्षजेन नतोन्नतम् ।
आयनाक्षजयोर्योगवियोगाल्लग्नमुक्तवत् ॥ ९ ॥

नक्षत्रोंके शरके अधिकारवशात् मध्य अवमसे चर निर्देश करके स्पष्ट शरसे उसी प्रकार चर निर्धारण करे एवं दोनोंको योग वा वियोग करनेपर (भिन्न हो तो योग अन्यथा वियोग करे) नत किम्वा उन्नत अक्षदृक् कर्म्मे गत प्राण निर्णीत होगा । आयन दृक्कर्म्म गत उक्त असु (प्राण) योग वा वियोगसे पूर्ववत् लग्ननिर्णय होगा ॥ ८ ॥ ९ ॥

सत्रिराशिग्रहद्युज्यानिघ्नास्त्रिज्योद्धृतः शरः ।
स्फुटोऽसौ क्रान्तिसंस्कारे दृक्कर्मण्यक्षजे तथा ॥ १० ॥

शरको त्रिराशियुक्त स्थानकी ज्यासे गुणन कर त्रिज्यासे भाग करनेपर स्पष्ट शर होगा । क्रान्ति संस्कारमें एवं अक्ष दृक्कर्म्ममें यह स्पष्ट शर व्यवहृत होता है ॥ १० ॥

ब्रह्मगुप्तादिभिः स्वल्पान्तरत्वान्न कृतः स्फुटः ।
स्थित्यर्धपरिलेखादौ गणितागत एव हि ॥ ११ ॥

स्वल्पान्तर हेतु ब्रह्मगुप्त आदि स्पष्ट शरको दृक्कर्म्ममें व्यवहार नहीं करते हैं । उनने स्थित्यर्द्ध और परिलेखादिमें यह गणितागत शर व्यवहार किया है ॥ ११ ॥

उत्क्रमज्याविधानेन दृक्कर्म वलनं तथा ।
यत्तैरुक्तं न तत्तथ्यं व्यभिचारोऽत्र कथ्यते ॥ १८ ॥

दृक्कर्म्म और वलन निर्णय कालमें उत्क्रमज्याका विधान मिथ्या हुआ है । और एक दोषावह निर्णय दिखलाता हूं ॥ १८ ॥

जिनाल्पकक्षांशगुणत्रिभज्या घातो जिनज्याविहृतोऽस्य चापम् । तेन त्रिभोनेन समं प्रतीच्यां प्राक् सत्रिभेण द्युचरः कुजे चेत् ॥ १९ ॥ दृङ्मण्डलाकारतयापवृत्तं तद्याम्यसौम्यं क्षितिजं तदा स्यात् । क्षिप्तोऽपि खेटः परमेषुणात्र याम्योत्तरत्वात् क्षितिजं न जह्यात् ॥ २० ॥

अक्षांश २४ अंशसे अल्प होनेपर उसकी ज्या त्रिज्याद्वारा गुणन कर २४ अंशकी ज्या द्वारा भाग कर धनु निश्चय करे अपम वृत्तमें मेष आदिसे उतनी दूरपर स्थानका निश्चय करे। उस स्थानसे९०अंश पूर्व या पश्चिममें ग्रह अवस्थित करता है तो अपम वृत्त दृङ्मण्डलाकार होगा एवं क्षितिज रेखा उसके याम्योत्तरमें होगी । ग्रह परम विक्षिप्त होनेपर याम्योत्तर क्षितिज रेखासे अन्यथा नहीं होगा ॥ १९ ॥ २० ॥

दृक्कर्मसम्भूतफलद्वयस्य नाशो भवेदत्र धनर्णसाम्यात् । नैवोत्क्रमज्याविधिनात्र साम्यं दृक्कर्म कार्य्यं क्रमजीवयातः ॥ २१ ॥

दृक्कर्म्म सम्भूत दोनों वलन योग और वियोग वशात् विनाश होकर यहांपर ऐसा हुआ है । उत्क्रमज्या व्यवहार करके समता लाभ नही करता अतएव दृक्कर्म्म क्रमज्या द्वारा करना चाहिये ॥ २१ ॥

तथैव नाशो वलनद्वयस्य साम्याद्दिगन्यत्ववियोजनेन । न साम्यमत्रोत्क्रमजीवया स्यात् क्रमज्ययातो वलनं विधेयम् ॥ २२ ॥

दोनों वलनोका समत्व और विपरीत दिगत्व वशतः विनाश हुआ है । क्रमज्याद्वारा इस प्रकार साम्यता नहीं होगी इसलिये क्रमज्याद्वारा वलन विधान करना चाहिये ॥ २२ ॥

गर्वाद्रसराभस्यात् परविश्वासात् प्रमादतश्चापि ।
मुह्यन्त्यपि मतिमन्तः किं मन्दोऽन्यैस्तथा चोक्तम् ॥ २३ ॥

उत्क्रमज्याविधानेन दृक्कर्म वलनं तथा ।
यत्तैरुक्तं न तत्तथ्यं व्यभिचारोऽत्र कथ्यते ॥ १८ ॥

दृक्कर्म्म और वलन निर्णय कालमें उत्क्रमज्याका विधान मिथ्या हुआ है। और एक दोषावह निर्णय दिखलाता हूं ॥ १८ ॥

जिनाल्पकक्षांशगुणत्रिभज्या घातो जिनज्याविहृतोऽस्य चापम् । तेन त्रिभोनेन समं प्रतीच्यां प्राक् सत्रिभेण द्युचरः कुजे चेत् ॥ १९ ॥ दृङ्मण्डलाकारतयापवृत्तं तद्याम्यसौम्यं क्षितिजं तदा स्यात् । क्षिप्तोऽपि खेटः परमेषुणात्र याम्योत्तरत्वात् क्षितिजं न जह्यात् ॥ २० ॥

अक्षांश २४ अंशसे अल्प होनेपर उसकी ज्या त्रिज्याद्वारा गुणन कर २४ अंशकी ज्या द्वारा भाग कर धनु निश्चय करे अपम वृत्तमें मेष आदिसे उतनी दूरपर स्थानका निश्चय करे। उस स्थानसे ९० अंश पूर्व या पश्चिममें ग्रह अवस्थित करने ... तो अपम वृत्त दृङ्मण्डलाकार होगा एवं क्षितिज रेखा उसके याम्योत्तरमें होगी । ग्रह परम विक्षिप्त होनेपर याम्योत्तर क्षितिज रेखासे अन्यथा नहीं होगा ॥ १९ ॥ २० ॥

दृक्कर्मसम्भूतफलद्वयस्य नाशो भवेदत्र धनर्णसाम्यात् । नैवोत्क्रमज्याविधिनात्र साम्यं दृक्कर्म कार्य्यं क्रमजीवयातः ॥ २१ ॥

दृक्कर्म्म सम्भूत दोनों वलन योग और वियोग वशात् विनाश होकर यहांपर ऐसा हुआ है । उत्क्रमज्या व्यवहार करके समता लाभ नहीं करता अतएव दृक्कर्म्म क्रमज्या द्वारा करना चाहिये ॥ २१ ॥

तथैव नाशो वलनद्वयस्य साम्याद्दिगन्यत्ववियोजनेन । न साम्यमत्रोत्क्रमजीवया स्यात् क्रमज्ययातो वलनं विधेयम् ॥ २२ ॥

दोनों वलनोंका समत्व और विपरीत दिगत्व वशातः विनाश हुआ है। क्रमज्याद्वारा इस प्रकार साम्यता नहीं होगी इसलिये क्रमज्याद्वारा वलन विधान करना चाहिये ॥ २२ ॥

गर्वाद्रसराभस्यात् परविश्वासात् प्रमादतश्चापि ।
मुह्यन्त्यपि मतिमन्तः किं मन्दोऽन्यैस्तथा चोक्तम् ॥ २३ ॥

गर्व्व, यश पानेकी इच्छापर विश्वास प्रमाद द्वारा बुद्धिमान् व्यक्ति भी भ्रममें गिरते हैं, मन्दबुद्धिवालोंकी बातही क्या है ॥ २३ ॥

गणयन्ति नापशब्दं न वृत्तभंगं क्षयं न चार्थस्य ।
रसिकत्वेनाकुलिता वेश्यापतयः कुकवयश्च ॥ २४ ॥

इति श्रीभास्करीये गोलाध्यायं उदयास्तदक्कर्मवासना ।

कहा है जो वेश्यापति और कुकविलोग हैं उन लोगोंके प्रतिवस्तुमें आसक्त रहकर साधारणकी आलोचना किम्वा वृत्तभंग स्वीय क्षयत्व और अर्थशून्यता प्रभृतिपर दृक्पात नहीं करते ॥ २४ ॥

इति उदयास्तदक्कर्म्म वासना ।

तरणिकिरणसंगादेष पीयूषपिण्डो दिनकरदिशि चन्द्रश्चन्द्रिकाभिश्चकास्ति ॥ तदितरदिशि बाला कुन्तलश्यामलश्रीर्घट इव निजमूर्तिच्छाययैवातपस्थः ॥ १ ॥

सूर्यकी किरणोंके संयोगसे अमृत पिण्ड चन्द्रमा सूर्य्य दृष्ट भागमें अपनी ज्योस्त्ना द्वारा प्रकाश पाता है । दूसरी ओर अपनी छाया द्वारा घटकी नाई आवृत्त होकर बालिकाके श्यामल कुन्तलकी नाई दीखता है ॥ १ ॥

सूर्य्यादधःस्थस्य विधोरधःस्थमर्धं नृदृश्यं सकलासितं स्यात् । दर्शेऽथ भार्धान्तरितस्य शुक्लं तत्पौर्णमास्यां परिवर्त्तनेन ॥ २ ॥

अमावास्याको सूर्य्यके अधःस्थित चन्द्रमाके नीचे पृथिवी रहनेसे मनुष्य दृष्ट अर्द्धभाग सम्पूर्णही कृष्णवर्ण(काला)होता है । अन्यथा पूर्णमासीको ६ राशि दूरमें अवस्थित होनेपर शुक्लवर्ण दीखता है ॥ २ ॥

कक्षाचतुर्थे तरणेर्हि चन्द्रकर्णान्तरे तिर्य्यगिनो यतोऽब्जात् । पादोनषट्काष्ट ८५।४५ लवान्तरेऽतो दलं नृदृश्यस्य दलस्य शुक्लम् ॥ ३ ॥

चन्द्रमा सूर्य्य कक्षामें चतुर्थांश दूरमें एक विन्दु स्थिर करके चन्द्राभिमुख चन्द्रमाकी दूरतानुसार, दूरपर दूसरा विन्दु निश्चय करे । उसी स्थानमें सूर्य्य आनेसे अर्द्धशुक्ल दीख पड़ेगा वही स्थान चन्द्रमासे ८५ अंश ४५ कला दूरमें होगा ॥ ३ ॥

उपचितिमुपयाति शौक्ल्यमिंदोस्त्यजत इनं व्रजतश्च मेचकत्वम् । जलमयजलजस्य गोलकत्वात् प्रभवति तीक्ष्णविषाणरूपतास्य ॥ ४ ॥

सूर्य्यको छोड़कर जितनी दूरमें गमन करता है चन्द्रमाका शुक्लत्व क्रमशः क्षय होता है, समुद्रोद्भूत गोलक कहकर क्रमशः तीक्ष्ण शृंगता लाभ करता है ॥ ४ ॥

यद्याम्योदकृतपनशशिनोरन्तरं सोऽत्र बाहुः
कोटिस्तूर्ध्वाधरमपि तयोर्यच्च तिर्यक्स कर्णः ।
दोर्मूलेऽर्कः शशिदिशि भुजोऽग्राच्च कोटिस्तदग्रे
चन्द्रः कर्णो रविदिगनया दीयते तेन शौक्ल्यम् ॥ ५ ॥

सूर्य्य और चन्द्रमाके उत्तर दाक्षिण अन्तर बाहु कोटि ऊपर नीचे, तिर्यग् रेखा (चन्द्रमा और सूर्य्य रेखा) कर्ण, है कोटि, कोटिका शेष चन्द्रमासे सूर्य्याभिमुखमें कर्ण है । उसी दिशामें सूर्य्य शुक्लत्व प्रधान करता है ॥ ५ ॥

ईषदीषदिह मध्यगमादौ ग्रन्थगौरवभयेन मयोक्ता । वासना मतिमता सकलोह्या गोलबोध इदमेव कलं हि ॥ ६ ॥

इति श्रीभास्करीये गोलाध्याये शृङ्गोन्नतिवासनाध्यायः ।

ग्रन्थके विस्तारभयसे मध्यगति वासनामें थोड़ा कहा है । बुद्धिमान् गणक—गोल बोधसे समस्तही जान सकते हैं ॥ ६ ॥

इति शृङ्गोन्नतिवासना ।

दिनगतकालावयवा ज्ञातुमशक्या यतो विना यन्त्रैः ।
वक्ष्ये यन्त्राणि ततः स्फुटानि संक्षेपतः कतिचित् ॥ १ ॥

विना यन्त्रकी सहायतासे उदयगत सूक्ष्मकाल निर्देश नहीं किया जा सकता, स्पष्टतया संक्षेपसे कई एक यन्त्रोंके विषयमें कहूंगा ॥ १ ॥

गोलो नाडीवलयं यष्टिः शंकुर्घटी चक्रम् ।
चापं तुर्य्यं फलकं धीरेकं पारमार्थकं यन्त्रम् ॥ २ ॥

गोल, नाडी, वलय, यष्टि, शंकु, घटी, चक्र, धनु, चतुर्थांश फलक प्रभृति यन्त्र कहे गये हैं, किन्तु बुद्धिही एकमात्र उत्कृष्ट यन्त्र है ॥ २ ॥

अपवृत्तगरविचिह्नं क्षितिजे धृत्वा कुजेन संसक्ते ।
नाडीवृत्ते बिन्दुं कृत्वा धृत्वाथ जलसमं क्षितिजम् ॥ ३ ॥

रविचिह्नस्य च्छाया पतति कुमध्ये यथा तथा विधृते ।
उडुगोले कुजाबिन्द्वोर्मध्ये नाड्यो द्युयाताः स्युः ॥ ४ ॥

अपवृत्त स्थित रविचिह्न क्षितिजसूत्रास्थित करनेपर नाडीवृत्तमें जिस स्थानमें क्षितिज मिला है, वहां बिन्दु अंकित करना चाहिये, जलकी नाईं समतलमें क्षितिज वृत्त सूर्य्यके चिह्नकी छाया पृथिवीपर पतित होगी, इस प्रकार करनेपर क्षितिज वृत्तमें नाडीवृत्त जिस स्थानमें संयुक्त हुआ है वहांसे पूर्वोक्त बिन्दुके मध्यस्थ घटी सूर्य्योदयसे निर्दिष्ट होगा ॥ ३ ॥ ४ ॥

अपवृत्ते कुजलग्ने लग्नं चाथो खगोलनलिकान्तः ।
भूस्थं ध्रुवयष्टिस्थं चक्रं षष्ट्या निजोदयैश्चांक्यम् ॥ ५ ॥
व्यस्तैर्यष्टीभायामुदयेऽर्कं न्यस्य नाडिका ज्ञेयाः ।
इष्टच्छायासूर्य्यान्तरेऽथ लग्नं प्रभायां च ॥ ६ ॥

क्षितिजगत अपवृत्त बिन्दुही लग्न है । अक्षस्थित खगोलनलिकामें पृथिवी मध्यगत ध्रुव यष्टिस्थित चक्र ६० भागोंमें भाग करके अपने २ उदयाङ्क-द्वारा राशि सब विपरीत दिशामें अंकित करे । यष्टिकी छाया सूर्य्योदयकालमें सूर्य्यस्थानमें पातित होगी । इस प्रकार रखकर सूर्य्योदयादि दंड ज्ञात होंगे इष्टसमयकी छायाभी सूर्य्यस्थानके अन्तर दण्ड और छायाके स्थानमें लग्न निर्देश होगा ॥ ५ ॥ ६ ॥

केनचिदाधारेण ध्रुवाभिमुखकीलकेऽत्र धृते ।
अथवा कीलच्छायातलमध्ये स्युर्नता नाड्यः ॥ ७ ॥

अथवा ध्रुवाभिमुख कीलको किसी आधारके द्वारा इस वृत्तको धरनेसे कील (यष्टि) छाया और सर्व्वनिम्नांशके मध्य नतनाडी ज्ञात होगी ॥ ७ ॥

घटदलरूपा घटिता घटिका ताम्रितले पृथुच्छिद्रा ।
द्युनिशनिमज्जनमित्या भक्तं द्युनिशं घटीमानम् ॥ ८ ॥

घटके नीचे अधोभागकी नाईं ताम्रपात्रके तलदेशमें एक बृहत् छिद्र करके दिनरातमें कितने बार डूबता है, सो निश्चय कर भाग करे वही घटीका मान निर्णय होगा * ॥ ८ ॥

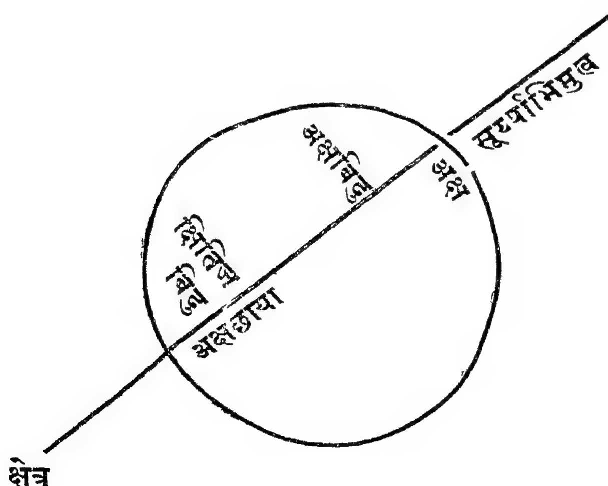
* जलके समतलसे छिद्रके अन्तरद्वारा जलप्रवेशके वेगका निर्णय होता है । घट जितनीही बार डूबेगा उतनाही स्वल्प होकर वेगका ह्रास होता है । उदाहरणः—दिन रातमें ६० बार डूबनेपर घटि द्वारा परिमाण जानना होगा ।

समतलमस्तकपरिधिर्भ्रमसिद्धो दन्तिदन्तजः शंकुः ।
तच्छायातः प्रोक्तं ज्ञानं दिग्देशकालानाम् ॥ ९ ॥

हाथी दांतका बना भ्रमसिद्ध (गोलाकार) तल और मस्तकके परिधिके समान Cylindrical Ivory rod इस प्रकार शंकुकी छायाद्वारा दिशा, देश और कालका ज्ञान कहा जाता है ॥ ९ ॥

चक्रं चक्रांशांकं परिधौ श्लथशृंखलादिकाधारम् ।
धात्री त्रिभआधारात्कल्प्या भार्द्धेऽत्र खार्द्धं च ॥ १० ॥
तन्मध्ये सूक्ष्माक्षं क्षिप्त्वार्काभिमुखनेमिकं धार्य्यम् ।
भूमेरुन्नतभागास्तत्राक्षच्छायया भुक्तः ॥ ११ ॥

चक्र ३६० भागोंमें विभक्त होकर परिधिमें श्लथरूपसे शृङ्खलादिद्वारा आबद्ध रहेगा आधारसे तीन राशि दूरमें क्षितिज (पृथिवी) और तीन राशि दूरमें आकाश मध्य । उसमें सूक्ष्माक्ष रखकर सूर्य्याभिमुख चक्र धरनेपर, अक्षछाया वहां मिली है, उसी स्थानसे पृथिवी बिन्दु जितनी दूरमें है, वही उन्नतांश जानना × ॥ १० ॥ ११ ॥



× कागजके समतल सूर्य्य भी स्थान ऊपर नीचे जानेवाले क्षेत्र समझनेसे वृत्तमें क्षितिज बिन्दु अक्षछायाका अन्तर उन्नतांश होगा ।

तत्तत्खार्द्धान्तश्च नता उन्नतलवसंगुणीकृतं द्युदलम् ।
द्युदलोन्नतांशभक्तं नाडचः स्थूलाः परैः प्रोक्ताः ॥ १२ ॥

आकाशमध्यसे उक्तछाया स्थानका अन्तर नतांश है । अनेक लोग कहते हैं जो दिवार्द्धद्वारा उन्नतांश गुणनकर दिवार्द्धके उन्नतांशद्वारा भाग करनेपर स्थूल दण्डादि होगा ॥ १२ ॥

पैत्रर्क्षपुष्यान्वितवारुणानामृक्षद्वयं नेमिगतं यथा स्यात् ।
दूरेऽन्तरेऽल्पेषु भखेचरौ वा तथात्र यन्त्रं सुधिया प्रधार्य्यम् १३॥
नेमिस्थदृष्ट्याक्षगतं प्रपश्येत्खेटं च धिष्ण्यस्य च योगताराम् ।
नेम्य्यंकयोरक्षयुजोस्तु मध्ये येंऽशाः स्थिता भध्रुवको युतस्तैः ॥ १४ ॥

मघा, पुष्य, रेवती और शतभिषक्में दो नक्षत्र परिधिगत करके अथवा अन्य किसी अपमसे स्वल्प दूर स्थित नक्षत्र द्वारा समक्षेत्रमें चक्रयन्त्र धारण करके नेमिस्थ अक्षगत ग्रहको देखकर और योगतारादर्शन करनेपर नेमिस्थित दोनों अक्षोंमें जो अंक वह नक्षत्र ध्रुवमें (जिस समय नक्षत्र पश्चिममें योग) करनेपर उनका स्पष्ट होगा । नक्षत्र पूर्वदिक्स्थित होनेपर वियोग करना चाहिये ॥ १३ ॥ १४ ॥

प्रत्यक् स्थिते भेऽथ पुरःस्थिते तैर्हीनो ध्रुवः स्यात् खचरस्य भुक्तम् । दलीकृतं चक्रमुशन्ति चार्ह कोदण्डखण्डं खलु तुर्य्यगोलम् ॥ १५ ॥

चन्द्रमाको अर्द्ध करनेपर धनु और उसको आधा करनेपर तुर्यगोल होगा १५

दृङ्मण्डलेऽत्र स्फुटकाल उक्तः सुखेन नान्यैर्युतितं मयातः । सद्गोलयुक्तेर्गणितस्य सारं स्पष्टं प्रवक्ष्ये फलकाख्ययन्त्रम् ॥ १६ ॥

सुखका विषय यह है जो दृङ्मण्डलस्थित उन्नतांशसे किसीने स्पष्टकाल निर्णय नहीं किया है, अतएव मैंने गोलगणितसारसे यह फलक नामक यन्त्र निर्देश किया है । उसको स्पष्टकर यहां कहूंगा ॥ १६ ॥

नित्यं जाड्यतमोहरं सुमनसामुल्लासनं सप्रभं
चार्केशं समयावबोधनविधौ प्रोद्बोधितज्योतिषम् ।

सेव्यं मण्डलमध्यगं सुकृतिभिर्यन्त्रं स्फुटं वच्म्यहं
नत्वैतद्गुणमेव देवममलं श्रीभास्करं भास्करः ॥ १७ ॥

नित्य जड़तिमिर हरणकारी बुद्धिमानोंके उल्लासकारी प्रभायुक्त सुखपूर्वक समयावरोधन हेतु ज्योतिषशास्त्रके उद्‌बोधनकारी मध्यगतमण्डलीविशिष्ट विद्वज्जनसेव्य यन्त्र स्पष्टकरके कहनेके लिये पहिले मैं (भास्कराचार्य्य) उपरोक्त निर्दोष गुणविशिष्ट सूर्य्यको प्रणाम करता हूँ ॥ १७ ॥

कर्त्तव्यं चतुरस्रकं सुफलकं खांका ९० ङ्गुलैर्विस्तृतं
विस्ताराद्द्विगुणा १८० यतं सुगणकेनायाममध्ये तथा ।
आधारःश्लथशृङ्खलादिघटितः कार्य्या च रेखा तत-
स्त्वाधारादवलम्बसूत्रसदृशी सा लम्बरेखोच्यते ॥ १८ ॥

एक चतुः समकोणविशिष्ट काष्ठफलक निर्माण कर उसके एक ओर विस्तार ९० अंगुलि और दैर्घ्य द्विगुण अर्थात् १८० अंगुलि होगी, दीर्घ पार्श्वमें श्लथ श्रृंखलादि द्वारा आधार निर्णय करके आधारसे लम्बभावसे सूत्रसदृशी रेखा लम्बरेखारूपसे निर्णय करना चाहिये ॥ १८ ॥

लम्बं नवत्य ९० ङ्गुलकैर्विभज्य प्रत्यंगुलं तिर्य्यगतः
प्रसार्य्य । सूत्राणि तत्रायतसूक्ष्मरेखा जीवाभिधानाः
सुधिया विधेयाः ॥ १९ ॥

वह लम्बरेखा ९० अंगुलिमें भागकर प्रति अंगुलिस्थानसे तिर्यग् गत रेखारूपज्या नामक रेखा पण्डित लोग स्थिर करेंगे ॥ १९ ॥

आधारतोऽधः खगुणां ३० गुलेषु ज्यालम्बयोगे सुषिरं
च सूक्ष्मम् । इष्टप्रमाणा सुषिरे शलाका क्षेप्याक्षसंज्ञा
खलु सा प्रकल्प्या ॥ २० ॥

आधारसे ३० अंगुलि दूरमें ज्यालम्ब योगस्थलमें इष्ट प्रमाणानुसार एक क्षेपांक नामक सूक्ष्म शलाका निर्णय करेंगे ॥ २० ॥

षष्ट्यंगुलव्यासमतश्च रन्धात् कृत्वा सुवृत्तं परिधौ तदंक्यम् ।
षष्ट्या घटीनां भगणांश ३६० कैश्च प्रत्यंशकं चाम्बुपलैश्च
दिग्भिः ॥ २१ ॥

इस बिन्दुको केन्द्र करके ६० अंगुलि व्यास एक वृत्त करके परिधिको ६० से घटिमें एवं ३६० अंशोंमें विभाग करनेपर प्रतिअंश १० पलमें विभक्त होगा ॥ २१ ॥

अग्रे सरन्ध्रा तनुपट्टिकैका षष्ट्यंगुला दीर्घतया नवा क्या। यत्खण्डकैः स्थूलचरं पलाद्यं तद्वोक्तु १९ हृन स्याच्चरशिञ्जिनीह ॥ २२ ॥

एक सूक्ष्म पट्टिका ६० अंगुलि दीर्घ और ६० भागमें विभक्त शेषाग्र एक छिद्र रहेगा। उस कटे खण्डकको १९ से भाग करनेपर स्थूल चरका धनु होगा ॥ २२ ॥

वेदा ४ भवाः ११ शैलभुवो १७ धृतिश्च १८ विश्वे १३ च बाणाः५पलकर्णनिघ्नाः। अर्कोद्धृताः स्युः क्रमशः स्वदेशे राश्यर्द्धलभ्यानि हि खण्डकानि ॥ २३ ॥

४, ११, १७, १८, १३, ५ से क्रमशः अक्षकर्ण गुणन कर १२ से भाग करनेपर उस स्थानका खण्डक होगा। यह खण्डक सब क्रमशः १५ अंश अन्तरपर ॥ २३ ॥

तैः क्रान्तिपाताढ्यरवेर्भुजज्या षष्टयुद्धृताक्षश्रवणेन युक्ता। दिग्घ्नी कृताप्ता भवतीह यष्टिः सा पट्टिकायां सुधिरात्र प्रदेया ॥ २४ ॥

सूर्य्यस्पष्टमें स्वीय भुजज्या योग करके ५० से भागकर अक्षकर्ण योग करके१०से गुणन कर ४ से भाग देवे तो भागफल यष्टि होगी,उसी यष्टिको सुधीगण पट्टिकापर निर्णय करेंगे ॥ २४ ॥

धार्य्यं तथा फलकयन्त्रमिदं यथैव
तत्पार्श्वयोर्लगति तुल्यमिनस्य तेजः।
छायाक्षजा स्पृशति तत्परिधौ यमंशं
तत्रांशके मतिमता तरणिः प्रकल्प्यः ॥ २५ ॥

उसके पीछे फलकयन्त्र इस प्रकार धारण करना चाहिये। जिसमें दोनों ओर सूर्य्यकिरण समान रूपसे लगें। अक्षज्या उस परिधिमें जिस स्थानमें स्पर्श करे उसी अंशमें सूर्य्य कल्पना करे ॥ २५ ॥

अक्षप्रोतां रविलवगतां पट्टिकां न्यस्य तस्मा-
द्यष्टेरग्रादुपरि फलकेऽधश्च गोलक्रमेण।
यत्नाद्देयश्चरदलगुणस्तत्र या ज्या तयात्र
छिन्ने वृत्ते तलगघटिकाः स्युर्नता लम्बकान्ताः ॥ २६ ॥

अक्षप्रोत सूर्य्याभिमुख पट्टिका रख यष्टिके अग्रसे फलकके ऊपर सूर्य्यका गोलाधिष्ठान जितना ऊपर या नीचेमें चरार्द्ध रखनेपर उस स्थानकी ज्याने जहां वृत्तभेद किया है, वहांसे लम्बकपर्य्यन्त नतघटिका निर्णय करे ॥२६॥

लम्बाद्देया विनतघटिकास्तज्ज्यकातश्चरज्या
व्यस्ता देया भवति च तथा यापरा तत्र मौर्वी ।
धार्य्या पट्टी स्पृशति हि यथा तज्ज्यकां यष्टिचिह्नं
पट्टीस्थाने निपतति तदाक्षस्य नूनं प्रभास्य ॥ २७ ॥

लम्बरेखासे नतघटिज्या और चरज्या विपरीतभावसे संस्कार करनेपर जो होगा, उसका धनु निर्णय कर, यदि धारण करनेपर यष्टिचिह्न जिस स्थानमें स्पर्श करे उसी स्थानमें अक्षकी प्रभा पतित होती है ॥ २७ ॥

त्रिज्याविष्कम्भार्द्धं वृत्तं कृत्वा दिगंकितं तत्र ।
दत्त्वाग्रां प्राक्पश्चाद्द्युज्यावृत्तं च तन्मध्ये ॥ २८ ॥

त्रिज्या व्यासार्द्धद्वारा एक वृत्त अंकित कर उसमें दिक् निर्देश करे । प्राक् और पश्चाद् गामी रेखा उसमें अंकित करे अग्रा चिह्न करके द्युज्यावृत्तमें अंकित करे ॥ २८ ॥

तत्परिधौ षष्ट्यंकं यष्टिर्नष्टद्युतिस्ततः केन्द्रे ।
त्रिज्यांगुला निधेया यष्ट्यग्राग्रान्तरं यावत् ॥ २९ ॥

द्युज्यावृत्तकी परिधिमें ६० भाग करके त्रिज्यापरिमित यष्टिकेन्द्र रखकर सूर्य्यके सम्मुख रक्खे (जिससे कोई छाया न पड़े) अग्रा और यष्ट्यग्र अंगुल आदि पदार्थको निर्णय करेंगे ॥ २९ ॥

तावत्या मौर्व्या यद्द्वितीयवृत्ते धनुर्भवेत्तत्र
दिनगतशेषा नाड्यः प्राक्पश्चात्स्युः क्रमेणैवम् ॥ ३० ॥

यह अन्तर मध्यवृत्तमें ज्या ग्रहण करनेपर उसका धनु सूर्य्योदयमें गत दण्ड आदि या सूर्य्यास्त शेषदण्डादि निर्दिष्ट होगा ॥ ३० ॥ *

यष्ट्यग्राल्लम्बोना ज्ञेया दृज्या नृकेन्द्रयोर्मध्ये
उदयेऽस्ते यष्ट्यग्रप्राच्यपरा मध्यमग्रा स्यात् ॥ ३१ ॥

---

* त्रिज्यापरिमित यष्टि सूर्य्यसम्मुख रहनेमें यष्ट्यग्र और अग्राग्रका अन्तर द्युज्यावृत्तस्थित सूर्य्य और सूर्य्योदय स्थानका अन्तर । किन्तु द्युज्यावृत्त त्रिज्यावृत्तकी अपेक्षा क्षुद्र कहकर मध्यवृत्तमें (द्युज्यावृत्त) परिमाण ग्रहण किया गया ।

अक्षप्रोत सूर्य्याभिमुख पट्टिका रख यष्टिके अग्रसे फलकके ऊपर सूर्य्यका गोलाधिष्ठान जितना ऊपर या नीचेमें चरार्द्ध रखनेपर उस स्थानकी ज्याने जहां वृत्तभेद किया है, वहांसे लम्बकपर्य्यन्त नतघटिका निर्णय करे ॥२६॥

लम्बाद्देया विनतघटिकास्तज्ज्यकातश्चरज्या
व्यस्ता देया भवति च तथा यापरा तत्र मौर्वी ।
धार्य्या पट्टी स्पृशति हि यथा तज्ज्यकां यष्टिचिह्नं
पट्टीस्थाने निपतति तदाक्षस्य नूनं प्रभास्य ॥ २७ ॥

लम्बरेखासे नतघटिज्या और चरज्या विपरीतभावसे संस्कार करनेपर जो होगा, उसका धनु निर्णय कर, यदि धारण करनेपर यष्टिचिह्न जिस स्थानमें स्पर्श करे उसी स्थानमें अक्षकी प्रभा पतित होती है ॥ २७ ॥

त्रिज्याविष्कम्भार्द्धं वृत्तं कृत्वा दिगंकितं तत्र ।
दत्त्वाग्रां प्राक्पश्चाद्द्युज्यावृत्तं च तन्मध्ये ॥ २८ ॥

त्रिज्या व्यासार्द्धद्वारा एक वृत्त अंकित कर उसमें दिक् निर्देश करे । प्राक् और पश्चाद् गामी रेखा उसमें अंकित करे अग्रा चिह्न करके द्युज्यावृत्तमें अंकित करे ॥ २८ ॥

तत्परिधौ षष्ट्यंकं यष्टिर्नष्टद्युतिस्ततः केन्द्रे ।
त्रिज्यांगुला निधेया यष्ट्यग्राग्रान्तरं यावत् ॥ २९ ॥

द्युज्यावृत्तकी परिधिमें ६० भाग करके त्रिज्यापरिमित यष्टिकेन्द्र रखकर सूर्य्यके सम्मुख रक्खे (जिससे कोई छाया न पड़े) अग्रा और यष्ट्यग्र अंगुल आदि पदार्थको निर्णय करेंगे ॥ २९ ॥

तावत्या मौर्वा यद्वद्द्वितीयवृत्ते धनुर्भवेत्तत्र
दिनगतशेषा नाड्यः प्राक्पश्चात्स्युः क्रमेणैवम् ॥ ३० ॥

यह अन्तर मध्यवृत्तमें ज्या ग्रहण करनेपर उसका धनु सूर्य्योदयमें गत दण्ड आदि या सूर्य्यास्त शेषदण्डादि निर्दिष्ट होगा ॥ ३० ॥ *

यष्ट्याग्राल्लम्बोना ज्ञेया दृज्या नृकेन्द्रयोर्मध्ये
उदयेऽस्ते यष्ट्यग्रप्राच्यपरा मध्यमग्रा स्यात् ॥ ३१ ॥

---

* त्रिज्यापरिमित यष्टि सूर्य्यसम्मुख रहनेमे यष्ट्यग्र और अग्राग्रका अन्तर द्युज्यावृत्तस्थित सूर्य्य और सूर्य्योदय स्थानका अन्तर । किन्तु द्युज्यावृत्त त्रिज्यावृत्तकी अपेक्षा क्षुद्र कहकर मध्यवृत्तमें (द्युज्यावृत्त) परिमाण ग्रहण किया गया ।

षष्ट्यग्रसे समतलका अन्तर शंकु है। शंकुतलसे केन्द्रका अन्तर दृग्ज्या है। उदय और अस्तकालमें यष्ट्यग्र जिस स्थानमें पड़ता है। और प्राक् पर सूत्रके मध्यमें अग्रा अवस्थित है ॥ ३१ ॥

शंकूदयास्तसूत्रान्तरमर्कगुणं नरोद्धृतं पलभा।
भुजयोरेकान्यदिशोरन्तरमैक्यं रविक्षुण्णम् ॥ ३२ ॥
शंक्वन्तरहृत्पलभा प्रागपराशानरान्तरं बाहुः।
यष्ट्या शंकुत्रितयं ज्ञात्वा वा कथ्यते सर्वम् ॥ ३३ ॥

शंकु और उदयास्तसूत्रका अन्तर १२ से गुणन कर शंकुद्वारा भाग करनेपर पलभा होगी। दोनों भुजका (अन्य दिक्स्थित होनेपर) भोगफल नहीं तो वियोगफल १२ से गुणन कर दोनों शंकुके अन्तरसे भाग करनेपर पलभा होगी। पूर्व पश्चिम रेखा और शंकुतलका अन्तरही बाहु है। यदि विभिन्न तीन समयका शंकु निर्देश कियाजावे तो समय आदि सबही कहाजावे३२॥३३*

आद्यन्तशंकुशिरसोस्तिर्यक्सूत्रं निबध्य तत्सक्ते।
मध्यमशङ्क्वग्राद्वे सूत्रे भूमिं पृथङ्नेये ॥ ३४ ॥

आदि और शेषशंकुमें तिर्यग्भागमें सूत्र निबद्ध कर मध्यशंकुसे पूर्व और पश्चिम ओर दो सूत्र पूर्वसूत्र संलग्न करलेवे ॥ ३४ ॥

भूचिह्नद्वितयोपरि सूत्रं तत्रोदयास्तसूत्रं स्यात।
तत्केन्द्रान्तरमग्रा सूत्रादग्रान्तरे ततः प्राची ॥ ३५ ॥

पृथिवीगत दोनों चिह्न सूत्रही उदयास्तसूत्र है। केन्द्रसे इसका अन्तरही अग्रा है। सूत्रसे अग्रान्तर दूरमें प्राक्पश्चिम सूत्र है ॥ ३५ ॥

प्राग्वदतोऽक्षच्छाया तच्छ्रुतिविहृताग्रकार्कसंगुणिता।
क्रान्तिज्या त्रिज्याघ्नी जिनभागज्योद्धृता दोर्ज्या ॥ ३६ ॥

पूर्ववत् अक्षछाया निर्णय करे। अक्ष कर्णद्वारा १२ गुणित अग्रभाग करनेपर क्रान्तिज्या होगी, क्रान्तिज्या त्रिज्याद्वारा गुणन कर २४ अंशकी ज्याद्वारा भाग करनेसे भुजज्या होगी ॥ ३६ ॥

---

* शंकु×पलभा=भुज×१२......... २ शंकु×पलभा=भुज×१२........उपरोक्त समराशि अन्तर करनेपर पलभा (शंकु-शंकु)=१२ (भुज-भुज) शंकु और भुज एक समयका भी शंकु और भुज अन्य समयका।

तद्धनुराद्ये चरणे वर्षस्यार्कः प्रजायतेऽन्येषु ।
भार्धाच्च्युतः सभार्धो भगणात्परितोऽब्दचरणानाम् ॥ ३७ ॥

उसका धनु वर्षके तीनमासमें होनेपर सूर्य्यस्पष्ट (सायन) द्वितीय तीन मासमें छः राशिसे वियोग करनेपर तृतीय तीन मासमें ६ राशि योग करनेपर और चतुर्थ तीनमासमें १२ राशिसे वियोग करनेपर सूर्य्य स्पष्ट होगा ॥ ३७ ॥

ऋतुचिह्नैर्ज्ञानं स्यादृतुचिह्नान्यग्रतस्ततो वक्ष्ये ।
भात्रितयाद्भाभ्रमणं न सदस्मादिक्पलाद्यं च ॥ ३८ ॥

ऋतुचिह्नसे वर्षके किसी चतुर्थांशमें सूर्यका अवस्थान जानाजावेगा । ऋतुचिह्न सब पीछे कहे जावेंगे । शंकु छायाग्रत्रय होकर छायावृत्त गया है ऐसा कोई २ कहता है । किन्तु वह भ्रमात्मक है । इसलिये उक्त वृत्तसे दिक्पालादि सबही गणना भ्रममात्र हैं ॥ ३८ ॥

छायातोऽग्रातो वा भानुः संक्रान्तिपात एव स्यात् ।
पातोनः स्फुटभानुः स्फुटभानूनो भवेत्पातः ॥ ३९ ॥

छाया या अग्रासे जो सूर्य्यस्पष्ट गणित होता है वही क्रान्तिपात होगा, पात (सायन) घटाने पर पातस्पष्ट जानाजावेगा ॥ ३९ ॥

अथ किमु पृथुतन्त्रैर्धीमतो भूरियन्त्रैः स्वकरकलितयष्टेर्द-
त्तमूलाग्रदृष्टेः । न तदविदितमानं वस्तु यद्दृश्यमानं दिवि
भुवि च जलस्थं प्रोच्यतेऽथ स्थलस्थम् ॥ ४० ॥

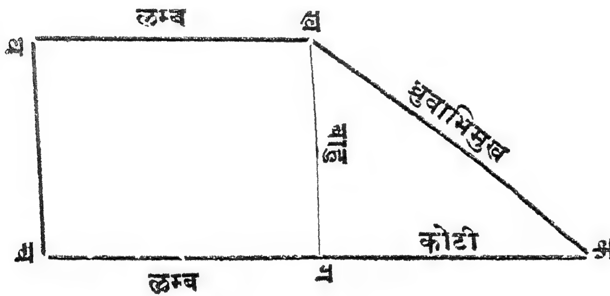
बुद्धिमान् व्यक्तिको नानाशास्त्र कथित यन्त्रकी आवश्यकता क्या स्वीय हस्तस्थित यष्टिमूलसे अग्रपर्य्यन्त दृष्टि निर्देश करके आकाश भूमि और जलस्थ कोई दृश्यमान वस्तुही अविदित नहीं रहता । इस विषयमें सामान्यतः कुछ कहूंगा ॥ ४० ॥

वंशस्य मूलं प्रविलोक्य चाग्रं तत्स्वान्तरं तस्य समु-
च्छ्रयं च ॥ यो वेत्ति यष्ट्यैव करस्थयासौ धीयन्त्रवेदी
वद किं न वेत्ति ॥ ४१ ॥

जो लोग करस्थित यष्टिद्वारा बांसके मूल और अग्र देखकर उसकी उच्चता और दूरता निर्देश कर सकते हैं वे धीयन्त्र वेदी क्या नहीं जानते ? ॥ ४१ ॥

यष्ट्यग्रमूलसंस्थं विद्धा ध्रुवमग्रमूलयोर्लम्बौ ।
बाहुर्लम्बान्तरभूर्लम्बोच्छ्रायान्तरं कोटिः ॥ ४२ ॥
कोटिर्द्वादशगुणिता बाहुविभक्ता पलप्रभा ज्ञेया ।
विद्धैवं वंशतलं दृष्टुच्छ्रायाहताद्बाहोः ॥ ४३ ॥

यष्ट्यग्र ध्रुवनक्षत्राभिमुखमें संविद्ध कर दो अन्तसे लम्ब रचना करे । लम्बान्तर बाहु और लम्बके परिमाणान्तर कोटी है । १२ गुणित कोटि बाहुद्वारा भाग करनेपर पलभा होती है । इस प्रकार वंशतत्व विद्धकर द्रष्टाके परिमाणद्वारा वार गुणा करना चाहिये *॥ ४२ ॥ ४३ ॥



कोटचा लब्धं ज्ञेयं स्ववंशमध्ये महीमानम् ।
विद्धाथो वंशाग्रं भूमानं कोटिसंगुणं भक्तम् ॥ ४४ ॥

उसको कोटीसे भाग करनेपर अपने स्थानसे वंशमध्य निर्णीत होगा । पीछे वंशाग्रमें विद्धकर भूमानको कोटीद्वारा भाग करके द्रष्टाकी उच्चता योग करनेपर वंशकी उच्चता जानीजावेगी ॥ ४४ ॥

दृष्णा वंशोच्छ्रायो दृष्टुच्छ्रायेण संयुतो ज्ञेयः ।
(पञ्चशक्रांगुला १४५ यष्टिरष्टषष्टिदृगुच्छ्रयः ।
षट्करास्तलवेधे दोः कोटिः सप्तदशांगुला ।
अग्रवेधे रसेशा १४६ दोः कोटिस्तुरगकुञ्जराः ।

---

* क ख ध्रुवाभिमुखी यष्टि । क च और ख घ दो लम्ब । इन्हीं दो लम्बोंमें अन्तर ख ग किम्वा घ च उसका नाम बाहु । च क च=ख घ (ग च)=क ग कोटी ये सब दूरता लम्ब ही परिमेय । कोण ख क ग अक्षांश है ।

वंशस्य यस्य तन्मानं चात्मवंशान्तरं वद ।)
अग्रं विद्धोर्द्धस्थः पुनरुपविष्टश्च तद्विद्ध्येत ॥ ४५ ॥
निजभुजभक्ते कोटी तदन्तरहृतो दृगौच्चयविश्लेषः ।
भूमिर्वंशौच्चयमतः पृथक् पृथक् पूर्ववज्ज्ञेयम् ॥ ४६ ॥

दण्डायमान अवस्थामें अग्रभाग विद्ध करके उपविष्ट अवस्थामें विद्ध करे निज २ भुज द्वारा अपनी २ कोटी भाग करने पर, भागफलान्तरको दृष्टिकी उच्चताके अन्तरद्वारा भाग करनेपर भूमि अर्थात् स्वस्थान और वंशमूलके अन्तर निर्णीत होगा । इससे पूर्वनियमानुसार उच्चता निर्णय करे ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

ऊर्द्धस्थस्य गृहादिभिर्व्यवहितस्याप्यग्रमात्रं सखे
वंशस्य प्रगुणस्य यस्य सुसमे देशे समालोक्यते ।
अत्रैव त्वमवास्थितो यदि वदस्यस्यान्तरं चोच्छ्रयं
मन्ये यन्त्रविदां वरिष्ठपदवीं यातोऽसि धीयन्त्रवित् ॥४७॥

गृहआदि द्वारा व्यवहित होकर समदेशस्थित किसी वंशका अग्रभागमात्र दीखता है । इस अवस्थामें एक स्थानमें ठहरकर अपनी उच्चतासे उसकी ऊंचाई निर्णय करसके तो मैं तुम्हें श्रेष्ठ यन्त्रवित् कहूंगा कारण यह है कि, तुम धीयन्त्रवित् होगे ॥ ४७ ॥

इष्टयष्ट्योर्द्धसंस्थेन वंशाग्रं विध्यता भुजः ।
दृष्टश्चतुष्करोऽथान्ययष्ट्या खांकांगुलः सखे ॥
एवं तोयेऽप्यौच्चयं तत्र दृगौच्चयोनितं भवति ।
किंवा यष्ट्या कोटी दृष्ट्युच्छ्रायौ जलान्तरे बाहू ॥ ४८ ॥

इस प्रकार जलमें प्रतिफलितदृष्टमें उच्चता निर्णीत होती है, किन्तु इससे चक्षुकी उच्चता अन्तर करना चाहिये अथवा इस स्थलमें यष्टिका प्रयोजन नहीं, कारण यह है कि, द्रष्टाकी दोनों उच्चता कोटी और जलस्थित (अग्रभागका) अन्तर बाहु ॥ ४८ ॥

दूरस्थस्य न दूरगस्य यदि वादृष्टस्य दृष्टस्य वा
वंशस्य प्रतिबिम्बितस्य सलिले दृष्टाग्रमात्रं सखे ।
अत्रैव त्वमवास्थितो यदि वदस्यस्यान्तरं चोच्छ्रयं
त्वां सर्वज्ञमतीन्द्रियज्ञमनुजव्याजेन मन्ये भुवि ॥ ४९ ॥

दूरस्थित किम्वा निकट दृष्ट वा अदृष्ट वंशके आगे को प्रतिबिम्ब जलमें देखकर एक स्थानमें अवस्थित रहकर यदि अन्तर और उच्चता कह सकते हो तो तुमको मैं मनुष्य रूप सर्व्वज्ञ और अतीन्द्रिय समझूंगा ॥ ४९ ॥

लघुदारुजसमचक्रे समसुषिराराः समान्तरा नेम्याम् ।
किञ्चिद्वक्रा योज्याः सुषिरस्यार्धे पृथक् तासाम् ॥ ५० ॥
रसपूर्णे तच्चक्रं द्व्याधाराक्षस्थितं स्वयं भ्रमति ।
उत्कीर्य नेमिमथवा परितो मदनेन संलग्नम् ॥ ५१ ॥
तदुपरि तालदलाद्यं कृत्वा सुषिरे रसं क्षिपेत्तावत् ।
यावद्रसैकपार्श्वे क्षिप्तजलं नान्यतो याति ॥ ५२ ॥

लघुकाष्ठनिर्मित समचक्रमें समान्तरमें समान सुषिर सब निमियोंमें बांधकर सबको किञ्चित् वक्रभावसे रक्खे । सुषिर सब अर्द्ध पारेसे पूर्ण करनेपर वही चन्द्र आधार स्थित होकर अपने आप भ्रमण होगा । नेमिकी चारों ओर किञ्चित् खोदकर उसके ऊपर तालपत्र और मोमसे बन्दकर आधा पारा और आधा जल देवे तो चक्र भ्रमण करेगा ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

पिहितच्छिद्रं तदतश्चक्रं भ्रमति स्वयं जलाकृष्टम् ।
ताम्रादिमयस्यांकुशरूपनलस्याम्बुपूर्णस्य ॥ ५३ ॥
एकं कुण्डजलान्तर्द्वितीयमग्रं त्वधोमुखं च बहिः ।
युगपन्मुक्तं चेत् कं नलेन कुण्डाद्बहिः पतति ॥ ५४ ॥

ताम्रप्रभृतिसे बना अंकुशकी नाईं नलमें जल भरकर (बन्दकर) एक कुण्ड करे जलमें और दूसरेको नीचे मुंह (खोलकर) रखनेसे जल कुण्डसे बाहर गिरेगा ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

नेम्यां बद्धा घटिकाश्चक्रं जलयन्त्रवत्तथा धार्य्यम् ।
नलकल्पप्रच्युतसलिलं पतति तथा तद्घटीमध्ये ॥ ५५ ॥
भ्रमति ततस्तत्सततं पूर्णघटीभिः समाकृष्टम् ।
चक्रच्युतं तदुदकं कुण्डे याति प्रणालिकया ॥ ५६ ॥

नेमिमें घटिकायन्त्र बांधकर जलयन्त्रकी नाईं धारण करनेपर नलसे बहिर्गत जल घटी मध्यमें पतित होगा इसलिये वह पूर्णघटीद्वारा आकृष्ट हो भ्रमण करता है, चक्रसे पतित जल नलद्वारा कुण्टमें गमन करता है ॥५५॥५६॥

यदधोरन्ध्रनलं तत् सापेक्षत्वात् स्वयंवहं ग्राम्यम् ।
चतुरचमत्कारकरी युक्तिर्यन्त्रं न हि ग्राम्या ॥ ५७ ॥

अधोभागमें छिद्र विशिष्ट नल स्वयं भ्रमण करता है सो ग्राम्य है चारों ओर चमत्कार कारी युक्तिविशिष्ट यन्त्रही यन्त्र है ॥ ५७ ॥

एवं बहुधा यन्त्रं स्वयंवहं कुहकविद्यया भवति ।
नेदं गोलाश्रितया पूर्वोक्तत्वान्मयाप्युक्तम् ॥ ५८ ॥

इति श्रीभास्करीये सिद्धान्तशिरोमणौ गोला-
ध्याये यंत्राध्यायः ।

कुहक (इन्द्रजाल) विद्याद्वारा अनेक प्रकारका स्वयंभ्रम यंत्र देखे जाते है वे गोलाश्रित नहीं है पूर्व ज्योतिषीगण कह गये है इसलिये मैंनेभी कहा है ॥ ५८ ॥

इति यंत्राध्यायः ।

उत्फुल्लन्नवमल्लिकापरिमलभ्रान्तभ्रमद्भ्रामरे
रे पान्थाः कथमव्यथानि भवतां चेतांसि चैत्रोत्सवे ।
मन्दान्दोलितचूतनूतनघनस्फारस्फुरत्पल्लवै-
रुद्वेलन्नववल्लरीष्विति लपन्त्युच्चैः कलं कोकिलाः ॥ १ ॥

हे पथिक ! इस चैत्रोत्सवमें जिस समय भ्रमर प्रस्फुटित नवमल्लिकाके गन्धमें मत्त होकर भ्रमण करता है, उस समय किस प्रकार अव्यथ चित्त होकर रहते हो ? इस प्रकार अति उच्च स्वरसे ध्वनि करके कोकिलगण वायुकर्तृक मन्दमन्द आलोडित आम्रके नूतन घन पल्लवितशाखाविशिष्ट नई वल्लरीमें रहता है ॥ १ ॥

स्वकुसुमैर्मलिनामिव मालतीमवहसन्ति वसन्तजमल्लिकाः ।
उपवनं विनिमारयतीव ताः किसलयैर्मलयानिलकम्पितैः २ ॥

वसन्तजमल्लिका अपने कुसुमद्वारा मलिन मालतीको उपहास करती है । मलयवायुद्वारा कम्पित होकर किसलय मानों प्राणियोंको उपवन छोडने कहता है ॥ २ ॥

विहाय सौधं तृणकुड्यमण्डपे प्रसिच्यमाने सलिलैः सम-
न्ततः । शुचौ रमन्ते विरलं विलासिनः प्रियाजनैः सीकर-
सेचनोन्मुखाः ॥ ३ ॥

ग्रीष्मकालमें विलासी व्यक्तिगण उनका प्रयोजन समभिव्याहारसे इष्टक प्रासाद छोडकर सब ओरसे जलसिक्तकुटीमें निर्जन आश्रय ग्रहण कर सौगन्धजल द्वारा परस्पर अभिवादनपूर्वक आनन्दमें मग्न होता है ॥ ३ ॥

निदाघदाहार्त्तिविघातहेतवे वनाय कामोच्छ्रितचूतकेतवे ॥ व्रजन्ति वापीजलकेलिलालसाः शुचौ रतिस्वेदगलज्जलालसाः ॥ ४ ॥

इस समय प्रियामोदजनितक्लममें परिश्रान्त होकर दोनों दम्पती तीव्र ग्रीष्म प्रतिरोधक आम्रध्वजनिकुञ्जवनके सामने जलाशयमें क्रीडा करनेके लिये अग्रसर होते हैं ॥ ४ ॥

मदनदहनखिन्नामागतेऽप्येत्य काले परिमलबहलानां मालतीनां नदीनाम् । अदय दयित सिञ्चस्यात्मदृग्वारिणा किं परिमलबहलानां मालतीनां नदीनाम् ॥ ५ ॥

हे निर्दय ! दयित ! किस कारण तुम नेत्रजलद्वारा अभिलाष कामिनीका कष्ट दूर नहीं करते ? मालतीके पुष्पका विकाश और नदीके स्रोत देखकर वर्षाकाल एवं सर्व्वोन्मादक प्रणय उपस्थित हुआ है । किस कारण तुम मेरे दूर कष्ट अपनोदन नहीं करते ? ॥ ५ ॥

उच्चैर्विरौति हि मयूरकुलं यदम्बमन्दं कदम्बमकरन्दविमिश्रितश्च । वातः प्रवाति परिरौति न तेन मन्ये निर्घ्राणनिर्घृणविकर्णविहत्त्वमस्य ॥ ६ ॥

मयूरगण वर्षाके प्रारम्भमें ऊंचेस्वरसे पुकारते हैं; कदम्बका परम मनोहर सुरभिसमाहित मन्द मारुत धीरे २ संचालित होता है तौभी मेरे पति क्यों नहीं आते ? वह क्या लताकीर्ण कुटीरके माधुर्य्य विस्तृत हुआ है ? उसकी क्यों सुननेकी शक्ति मारी गयी है ? उनने क्या दयाराज्य अतिक्रम किया है ? वे क्या हृदयवान् नहीं हैं ॥ ६ ॥

एवंविधं विरहिणी विरहेण खिन्ना भिन्नाञ्जनच्छविघने गगने घनान्तौ । मत्वा प्रियं तमदयं हृदयं प्रविष्टं ब्रूते सपेशलमलं परिहासमिश्रम् ॥ ७ ॥

वर्षाकालमें गंभीर कृष्णवर्ण मेघ उदित होनेपर विरहिणी नारी अपने हृदय-नाथके अनुपस्थितिमें प्रणय नैकट्य लंघन कर उसको दोषी निर्णय करके इस प्रकारका दोषारोप करते है ॥ ७ ॥

स्वतनुजवनराज्या पुष्पवन्त्याश्लिषन्त्या ह्यनुचितकृतसङ्गो ऽस्मीति शैलोऽनुतप्तः । निशि शशिकरचश्चन्निर्झरैरश्रुकल्पैः शरदि हृदिजखेदस्वेदवान् रोदितीव ॥ ८ ॥

पुष्पवती कन्याके साथ निषिद्ध आलिङ्गन कलुषित होकर पर्व्वत सर्वदा अनुतप्त है । शरत्कालमें वनराजि स्रोतस्वतीका चन्द्रकिरणोद्भासित जलराशि-द्वारा स्वीय दुःखसूचक अश्रुजल विसर्जन करता है ॥ ८ ॥

सहस्यकाले बहुशस्यसालिनीं चितामवश्यायकमौक्तिकोत्करैः । प्रहृष्टपुष्टाखिलगोकुलामिलां विलोक्य हृष्यन्त्यधिकं कृषीवलाः ॥ ९ ॥

हेमन्तऋतुमें कृषकगण क्षेत्रोंको श्यामल सस्यराजिपरिपूर्ण देखकर एवं मुक्ताफलसदृश शिशिर विन्दु विशोभित तृणमय क्षेत्रदर्शनपूर्वक आनन्दोत्फुल्ल होता है इस ऋतुके प्रभावसे वसुन्धरा नये साजसे विभूषिता होकर अत्या-श्चर्य होकर स्वयि लावण्यराशि विकाश कर कृषकगणको आनन्द विधान करते हैं ॥ ९ ॥

अरुणनीलनिमीलितपल्लवं प्रचुरफुल्लसमुल्लसनैः श्रियम् । वहति काञ्चन काञ्चनकाननं नवतरां नितरां शिशिरागमे ॥ १० ॥

शिशिरके प्रारम्भमें एक प्रकार अनिर्वचनीय शोभा एवं माधुर्य्य उपल-क्षित होता है । नाना प्रकार लाल एवं नीलवर्णसे रञ्जित होकर कचनार-कुञ्ज सर्वदा शोभित एवं उसका पूर्ण विकसित पल्लव सुविस्तृत और सर्वत्र सुपरिचित है ॥ १० ॥

अपुटतिग्ममरीचिमरीचिभिर्नहि तथा शिशिरे शिशिर-क्षतिः । निशि यथोष्मलपीनघनस्तनी भुजनिपीडनतः स्वपतां नृणाम् ॥ ११ ॥

मध्याह्नभास्कर पृथिवीमें किरण देनेपर और शिशिरऋतुमें शीतकष्ट सम्यक् नष्ट करनेमें समर्थ नहीं होता है ॥ ११ ॥

ऋतुव्यावर्णनव्याजादीषदेषा प्रदर्शिता । कविता तद्विदां प्रीत्यै रसिकानां मनोहरा ॥ १२ ॥

ऋतुवर्णनके छलसे रसिक काव्यवित् पाठकगणके प्रीतिके लिये कई एक श्लोकोंमें कविता का थोड़ा झलक दिखलाया गया है ॥ १२ ॥

सरसमभिलपन्तो सत्कवीनां विदग्धानवरतरमणीया भारती कामितार्थम् । न हरति हृदयं वा कस्य सा सानुरागा नवरतरमणी या भारती कामितार्थम् ॥ १३ ॥

सत् कवियोंके मधुमय वाक्योंमें किसका हृदय अनुरक्त नहीं होता ? सानुरागा नवीना रमणीके मनोहारिणी वाणी सुननेमें किसका हृदय मोहित नहीं होता है ॥ १३ ॥

न भवति हृतचित्तो वाचमाकर्ण्य रम्यां परभृतसरसां ना कोऽमलां सत्कवीनाम् । सततमुपगतानां साम्बुजैर्वा पयोभिः परभृतसरसां ना कोमलां सत्कवीनाम् ॥ १४ ॥

सत् कवियोंकी रसमयी सुन्दरी कविताके सुननेमें कौन व्यक्ति विमुग्ध नहीं होता । आनन्दपरिपूर्णबृहत्सरोवरविहारीके मधुर कण्ठ श्रवणमें किसका चित्त उन्मादित नहीं होता ॥ १४ ॥

त्रिदिवमधरयन्तस्तीरपंकेन नानारुचिरसिकतया वाश्लेषिताङ्गैः सुवृत्तैः । कृतिन इह रमन्ते रम्यसारस्वतौघे रुचिरसिकतया वा श्लेषितांगैः सुवृत्तैः ॥ १५ ॥

इति श्रीभास्करीये सिद्धान्तशिरोमणेर्गोलाध्याये
ऋतुवर्णनं समाप्तम् ।

धार्म्मिक व्यक्ति गंगाजल एवं पंक प्राप्त होनेपरभी जिस प्रकार स्वर्गसुख लाभ करते हैं, उसी प्रकार यथार्थ कविहृदय सुन्दर काव्यरसमें आप्लुत होता है ॥ १५ ॥

इति ऋतुवर्णनम् ।

प्रौढिं प्रौढसभासु नैति गणकः प्रश्नैर्विना प्रायशोऽतस्तान्वच्मि विचित्रभंगिचतुरप्रीतिप्रदानाय यान् ।

आकर्ण्यापि सुवर्णवर्णवदनं वैवर्ण्यमेति क्षणात्
तस्याखर्वकुगर्वपर्वतशिरःप्रौढ्याधिरूढोऽत्र यः ॥ १ ॥

प्रश्नोत्तरदानमें अनभ्यस्त गणक विद्वत्सभामें यश नहीं पाते इसलिये नानाभङ्गिचतुर व्यक्तिगणके प्रीतिके लिये कतिपय प्रश्न प्रस्तावना कहूंगा। प्रश्नश्रवणमात्रसे अत्युच्च विद्या गर्व्वविशिष्ट गणकका गर्व्व खर्वता लाभकर सुवर्णवर्ण आनन विवर्णता लाभ करता है ॥ १ ॥

पाट्या च बीजेन च कुट्टकेन वर्गप्रकृत्या च तथोत्तराणि ।
गोलेन यन्त्रैः कथितानि तेषां बालावबोधे कतिचिच्च वच्मि२

पहिले पाटी, बीजगणितकी सहायतासे वर्ग प्रकृति गोलयन्त्रप्रभृति द्वारा उत्तरादि कहा गया है फिर लडकोंके बोधके लिये कै एक कहूँगा ॥ २ ॥

अस्ति त्रैराशिकं पाटी बीजं च विमला मतिः ।
किमज्ञातं सुबुद्धीनामतो मन्दार्थमुच्यते ॥ ३ ॥

पाटीगणित त्रैराशिकमूलक है, बीजगणित विमलाबुद्धिसम्भूत इसलिये सुबुद्धि व्यक्तियोंको कुछभी अज्ञात नहीं । साधारण बुद्धिवालोंके लिये मै कहता हूं ॥ ३ ॥

वर्गं वर्गपदं घनं घनपदं संत्यज्य यद्गण्यते
तत्त्रैराशिकमेव भेदबहुलं नान्यत्ततो विद्यते ।
एतद्यद्बहुधास्मदादिजडधीधीवृद्धिबुद्ध्या बुधै-
र्विद्वच्चक्रचकोरचारुमतिभिः पाटीति तन्निर्मितम् ॥ ४ ॥

वर्ग वर्गपद, घन और घनपद विना समस्त त्रैराशिकमूलक केवल आकारमें अनेक प्रकार दीखता है । विमलबुद्धि विद्वान् पण्डित गणक लोगोंने हम लोगोंकी नाई जडबुद्धि व्यक्तियोंकी धीशक्तिकी वृद्धिके लिये पाटीगणितको रचा है ॥ ४ ॥

नैव वर्णात्मकं बीजं न बीजानि पृथक् पृथक् ।
एकमेव मतिर्बीजमनल्पा कल्पना यतः ॥ ५ ॥

बीजगणित वर्णात्मक नहीं है किंवा बीज सब पृथक् २ नहीं, बुद्धि ही एकमात्र बीज है, जिससे नानाप्रकारकी कल्पना सम्भूत है ॥ ५ ॥

अहर्गणस्यानयनेऽर्कमासाश्चैत्रादिचान्द्रैर्गणकान्विताः किम् ।
कुतोऽधिमासावमशेषके च त्यक्ते यतः सावयवोऽनुपातः॥६॥

अहर्गण लानेमें सूर्य्यमासोंमें चैत्रादिमास क्यों जोडा जाता ? या क्यों अधिमास और अवम दिन गणनाकालमें भागशेष परित्यक्त होता है, जिस कारण अनुपात सिद्ध करनेमें सावयव ग्रहण करना आवश्यक है ? ॥ ६ ॥

चन्द्रश्चन्द्रगुहो रवौ रविगुणश्चांगारकोऽङ्गाहतस्तद्योगो गुणसंगुणात्सुरगुरो राश्यादिकात् पातितः । शेषं चाप-रपर्य्ययोत्थखचरेणोनं युतं वा शनिः स्यात् केऽन्ये भगणा वदेति तव चेदस्ति श्रमो मिश्रके ॥ ७ ॥

चन्द्रमा १ को १ से सूर्य्यको १२ और मंगलको ६ से गुणनकर योगकर त्रिगुणित बृहस्पतिसे वियोग करनेपर शेषसे कोई स्पष्ट योग किंवा वियोग करनेपर शनिका स्पष्ट होगा । उनका भगण कितना होगा हे गणक ! यदि मिश्रगणितमें पारदर्शिता हो तो कहो ॥ ७ ॥

उद्देशकालापवदेव कार्य्यं योगान्तराद्यं ग्रहपर्य्ययाणाम् । दृष्टस्य चक्राणि तदूनितानि तैरूनितं तत् क्रमशो विधेयम् ८॥ अज्ञातखेटः स्वमृणं कृतश्चेदज्ञातचक्राणि भवन्ति तानि । क्षहाः प्रदेया अविशुद्धशुद्धौ क्षहैश्च तक्ष्यं कुदिनाधिकं चेत् ९

उपरोक्त निर्णय करनेमें उपरोक्त निर्देशके अनुसार योगान्तरादि करेंगे । जिस ग्रहसे निर्णय करना हो उसकी भगण संख्या वियोग किंवा भगणसे वियोग करे । इस प्रकार अज्ञात ग्रहका भगण होगा । वियोगादि न होनेपर कुदिन योग और कुदिनका अधिक होनेपर कुदिन वियोग करना चाहिये * ॥ ८ ॥ ९ ॥

ये याताधिकमासहीनदिवसा ये चापि तच्छेषके तेषामैक्यमवेक्ष्य यो दिनगणान् ब्रूतेऽत्र कल्पे गतान् । संश्लिष्ट-फुटकुट्टकोद्भटबटुक्षुद्रेणविद्रावणे तस्याव्यक्तविदो विदो विजयते शार्दूलविक्रीडितम् ॥ १० ॥

---

* वासनाभाष्यमें उदाहरण दिया है,–६० दिन व्यापी कल्पमें चन्द्रमाका ४, सूर्य्यका ३, मंगलका ५, बृहस्पतिका ७ और शनिका ९ भगण । प्रश्नोक्त मत कल्पशेषमें ४×१+३×१२×५×६=७० एवं बृ. ७×३=२१, ७० वियोग नहीं किया जाता कहनेसे ८१–७०=११ शनिका भगण ९ वियोग करनेपर २, किम्वा शनिसे वियोग करनेपर ५८, यही अज्ञात ग्रहका भगण होगा । यह सदा सत्य होता है । जिस किसी दिनके लिये गणना करनेसे वह ज्ञात होता है ।

जिसका गत अधिमास हीन दिवस और उन सबके भागशेषका ऐक्य अवगत होकर कल्पगत दिनगण बोल सकते है, वे लोग सामान्यतः संश्लिष्ट स्पष्ट कुट्टकानीत अङ्कशास्त्रमें प्रतिपन्न पण्डितसमाजमें शार्दूलकी नाईं विजयी हों ॥ १० ॥

कृताष्टाष्टिगोऽध्यब्धिशैलामरर्तुद्विप ८६३३७४४९१६८४ घ्ने सशेषाधिमासावमैक्ये । भवेद्व्येकचन्द्राह १६०२९९ ८९९९९९९ भक्तेऽवशेषं गतेन्दुद्युराशिस्ततः साव-नाद्यः ॥ ११ ॥

उपरोक्त ऐक्य फलको ८६३३७४४९१६८४ से गुणनकर एक न्यून कल्प चान्द्र दिनसे भाग करके जो बचे वही गत चन्द्र दिन है उससे सावन दिन निर्दिष्ट होगा ॥ ११ ॥

ये याताधिकमासहीनदिवसा ये चापि तच्छेषके तेषा-मैक्यमवेक्ष्य जिष्णुजकृताच्छास्त्राद्यथैवागतम् । भूशैले-न्दुखखाभ्रषट्करयुगाष्टाब्ध्यंग ६४८४२६०००१७१ तुल्यं यदा काले कल्पगतं तदा वदति यः स ब्रह्मसिद्धा-न्तवित् ॥ १२ ॥

उपरोक्त ऐक्यफल विष्णुसिद्धान्त मतसे ६४८४२६०००१७१ प्रदत्त है। इसको जानकर कल्पगत दिनसंख्या बोल सकनेस म उसको ब्रह्मसिद्धान्तका जाननेवाला समझूंगा ॥ १२ ॥

चक्राग्राणि गृहाग्रकाणि च लवाग्राणि ग्रहाणां पृथग्यानि स्युः कलिकाग्रकाणि विकलाग्राणीह धीवृद्धिदे । चन्द्रा-र्कारगुरुज्ञभार्गवचलच्छायासुतानां तथा पूर्वं सिद्धमह-र्गणागमविधौ न्यूनाहशेषं च यत् ॥ १३ ॥ षट्त्रिंशत् सहितानि तानि कुदिनैस्तष्टानि दृष्ट्वाग्रकाण्याचष्टे स्फुट-कुट्टके पटुमतिः खेटान् दिनौघं च यः । तं मन्ये गणि-ताटवीविघटनप्रौढिप्रमत्ताखिलज्योतिर्वित्करिकुम्भपीठ-लुठनप्रोत्कण्ठकण्ठीरवम् ॥ १४ ॥

चन्द्रमा, रवि, मंगल, बृहस्पति, बुध शुक्र,इनका शीघ्रोच्च भगणशेष, राशि-शेष, अंशशेष, कलाशेष और विकलाशेष ये ३६ अंकका योगफल कल्प

दिन संख्या हीनकर (जहांतक हो सके) प्रदत्त हुआ है । इस समय स्फुट कुट्टकगणनामें पारदर्शी अहर्गण गणना करके ग्रहोंका स्थान निर्देश करनेपर जाने वे गणित वनचारी हस्तीस्वरूप ज्योतिर्वित्गणोंमें सिंहतुल्य हैं१३॥१४॥

उद्दिष्टं कह १५७७९१७५०० तष्टमम्बुधिहृतं शुध्येन्न चेत् तत् खिलं लब्धं रामनखाद्रिलोचनरसत्र्यांकाद्रि २९०३६२७२०३ निघ्नं ततः। पञ्चाद्रित्रिनवाद्रिसागरयुगाच्छिद्राग्निभिः ३९४४७९३७५ संभजेच्छेषं स्याद्द्युगणो हरेण स युतो यावद्भवेदीप्सितः ॥ १५ ॥

उपरोक्त अंकोंमें ४ से भाग करनेपर गणनाका फल लाभ करसकता है । नहीं तो अगणनीय होगा । ४ से भागकर भागशेष अहर्गण होगा । इसको ७ से भाग करनेपर वारनिर्णय होगा । वार नहीं मिलनेपर जबतक शेष अंक अर्थात् ३९४४०००००० योग करो ॥ १५ ॥

पञ्चत्रिंशदहो सखे दिविषदां चक्रादिशेषाणि यान्येषां सावमशेषमैक्यमपि यद्धीवृद्धिदे जायते । तत् तष्टं कुदिनैः खखेषुभरविच्छिद्रेन्द्र १४९१२२७५०० तुल्यं गुरोरिन्दोर्वह्नि कुजस्य वा वद यदा कीदृग्द्युपिण्डस्तदा ॥ १६ ॥ दृष्टा चन्द्रादिने कदा वद पुनस्तादृक् च काव्याहनि । व्यक्ताव्यक्तविविक्तयुक्तिगणितं विद्वन् विजानासि चेत् ॥ १७ ॥

हे सखे! उपरोक्त ६ अंक समष्टि १४९१२२७५०० होनेपर अर्हगण कितने होंगे कहो ? कलार्द्धमें दश योग करनेपर विकला कलासे विकला वियोग कर तीन योग करनेपर अंश, राशि, कला और विकलामें योगफल १३० है यह अंक कौन सोमवार दिवस होनेपर फिर उक्त अंक शुक्रवारको होगा या कब होगा सो भी पाटीगणितवित् अवश्य कहेंगे ॥ १६ ॥ १७ ॥

राश्यादेर्विकला दृढकुदिनगुणाश्चक्रविकालिकाभक्ताः ।
शेषत्यागे लब्धं रूपयुतं भगणशेषं स्यात् ॥ १८ ॥
शेषोनहरो विकलाशेषं तस्मिन् कहाधिके ज्ञेयः ।
स खिलः खेटस्त्वखिले विकलाशेषाद्द्युपिण्डो वा ॥ १९ ॥

दृढभगणा येन गुणाश्चक्राग्रोना दृढकहैः शुद्धाः ।
स द्युगणो दृढकुदिनयुतस्तावद्यावदीप्सितो वारः ॥ २० ॥

राश्यादिविकलामें परिणत करके दृढ * कुदिनद्वारा गुणन कर चन्द्रविकलासे भागकर शेष त्याग करके लब्धाङ्कमें एकयोग करनेपर भगण शेष होगा । त्यक्त शेष भाजकसे वियोग करनेपर विकला होगी । कुदिनसे शेष अधिक होनेपर अमेय होगा । शेषोक्त विकलासे कुट्टक द्वारा अहर्गण मिलजावेगा । अथवा दृढ़ भगण द्वारा जिसको गुणन करनेपर, चन्द्र शेषद्वारा वियुक्त होकर दृढ़ कुदिनद्वारा भक्त होनेपर, कोई शेष नहीं रहेगा । दृढ़ कुदिन वार नहीं मिलनेपर जबतक मिले योग करे ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥

चक्राग्रं शशिनः खखाभ्रगगनप्राणर्तुभूमि १६५०००० हृतं शुद्धेच्चेन्नखिलं फलं कृतगुणाष्टाङ्गाहिनागा ८८६८-३४ हतम् । विश्वाग्न्यंगशराङ्कैः ९५६३१३ श्च विभजेत् स्याच्छेषमह्नां गणस्तावत् तत्र हरं क्षिपेदभिमते यावद्भवेद्वासरे ॥ २१ ॥

चन्द्रमाके भगण शेषाङ्क १६५०००० से निःशेषरूपमें भाग होनेपर इस प्रश्नका उत्तर दिया जा सकता, दृढ भगण शेषांक ८८६८३४ से गुणन कर ९५६३१३ से भाग करनेपर शेषांक अहर्गण होगा । जिस समयपर्य्यन्त वार नही मिलेगा उस समयतक भाजकांक योग करे ॥ २१ ॥

राशयः खं ० लवाः पञ्च ५ कलाः षड्वर्ग ३६ संमिताः ।
विकला गोभुवो १९ नेदृङ्मध्येन्दुरुदये क्वचित् ॥ २२ ॥

उदयकालमें चन्द्रमध्य कभी ० । ५ । ३६ । १९ नहीं होगा ॥ २२ ॥

स्याद्यस्मिन्नधिमासशेषककृतिर्दिग्घ्नी सरूपा कृतिर्व्येका शेषकृतिर्हृता च दशभिः स्यान्मूलदा वा यदा । काले कल्पगतं तदा वदति यस्तत्पादपद्मं बुधाः सेवन्ते बहुधाप्रमेयवियति भ्रान्ता भ्रमन्तोऽलिवत ॥ २३ ॥

अधिमास शेषके वर्गको १० से गुणनकर एक योग करनेपर कब वर्ग होगा ? या कब अधिमास वर्ग एक वियोग करके १० से भाग करनेपर भागफल वर्ग होगा, कल्पगत किस समय इस प्रकार होगा । यह जो कह

---

* दृढ़ अर्थात् गरिष्ठ साधारण गणकद्वारा भाग करनेपर जो अङ्क मिलता है ।

सकेंगे, उनके चरणकमलकी सेवा विद्वान् लोग बहुत प्रकारसे करेंगे, कारण यह है कि, वे लोग इस प्रकार प्रश्नमें आश्चर्य्यान्वित होकर शून्यमें भ्रमणशील भ्रान्त भौंरेकी नाईं अवस्थापन्न हैं ॥ २३ ॥

उद्दिष्टं कुट्टके तज्ज्ञैर्ज्ञेयं निरपवर्तनम् ।
व्यभिचारः क्वचित् क्वापि खिलत्वापत्तिरन्यथा ॥ २४ ॥

कुट्टक गणनासमयमें गणक अंक अपरिवर्त्तनीय है या नहीं सो जाने। नहीं तो फलमें व्यभिचार होनेकी सम्भावना होगी या अप्रमेय होगा ॥२४॥

प्राच्यामुज्जयिनीपुरात्कुपरिधेस्तुर्यंशके यत्पुरं
तस्मात् पश्चिमतोऽपि तावति ततोऽप्यन्यत् पुरारेर्दिशि ।
नैर्ऋत्यां यदतोऽपि तेषु नगरेष्वाचक्ष्व मेऽक्षांशकान्
गोलक्षेत्रविचक्षण क्षणमिदं संचिन्त्य चित्ते मुहुः ॥ २५ ॥

हे गोल और क्षेत्रविचक्षण विद्वन्! कुछ देर मनमें विचार कर कहो, उज्जयिनीसे पूर्वकी ओर पृथिवीकी परिधि चतुर्थांश दूरमें कौन २ नगरी है। वहांसे उतनी दूरमें पश्चिमकी ओर कौन नगरी है? शेषोक्त नगरीसे उत्तर पूर्व या दक्षिण पश्चिममें उतनी दूरमें स्थित नगरीका अक्षांश क्या है?*॥२५॥

दिग्ज्यापलभाक्षुण्णे त्रिज्यार्कहृते च बाहुकोटिज्ये ।
अपसृतियोजनलवजे तदन्तरं दक्षिणे भागे ॥ २६ ॥
ऐक्यं सौम्ये भूमेर्व्यस्तं पादाधिकेऽपसरे ।
रविगुणसमक्षश्रवसा भक्तं तच्चापमक्षांशाः ॥ २७ ॥

दोनों नगरोंके दूरयोजन अंशादिमें परिणत करके बाहु और कोटिज्या निर्णय करे, बाहुको दिग्ज्यासे गुणनकर त्रिज्यासे भाग करके और कोटीज्याको पलभासे गुणनकर १२ से भाग करे। दक्षिणदिशामें होनेपर अन्तर और उत्तर दिशामें होनेपर दोनों योग करे। चतुर्थांशके अधिक अन्तर होने-

---

* उज्जयिनीके उत्तरमें जिस स्थानमें मध्यरेखाके साथ क्षितिज रेखा मिली है—वही उत्तरदिशा है। क्षितिजरेखाके ९० अंश दूरमें पूर्वदिशा है। इसलिये मध्यवृत्तके दो बिन्दुओंसे तिर्यक् रूप ९० अंश दूरमें रहनेवाली विषुवरेखा पर बिन्दु निर्णीत हुई। उक्तस्थानको सिद्धान्तकार गण यमकोटी कहते हैं।

कोणस्थ दोनों स्थानमें अक्षांश ४५ अंश है। भास्कराचार्यने पीछेका नियम त्रिकोणमितिका दिया है।

पर विपरीत संस्कार करे । यह योगज किम्वा अन्तरजफलको १२ से गुणन-कर अक्षकर्णद्वारा भाग कर उसके धनुही अक्षांश होगा ॥ २६ ॥ २७ ॥

क्षितिपरिधिषडंशे प्राचि धारा नगर्यास्त्रिनयनदिशि यद्वा पत्तने चाग्निभागे । कथय गणक तत्र क्षिप्रमक्षांशकान्मे क्षितिपरिधितृतीयेऽथांशके तत्र तत्र ॥ २८ ॥

हे गणक ! शीघ्र कहो देखें धारानगरीके पूर्वदिशामें कुपरिधिके ६ अंश दूरमें अथवा ईशान किम्वा अग्निदिक् स्थित नगरीका अक्षांश कितना है ? उक्त तीन स्थान कुपरिधिके तृतीयांश दूरमें होनेही पर अक्षांश कितना होगा ? ॥ २८ ॥

मित्र मित्रास्त्रिनेत्रस्य दिश्युद्गमं याति तत्र त्रिनेत्रर्क्षमध्यस्थितः । तत्र मे तान्त्रिकाक्षुब्धमक्षप्रभां क्षिप्रमाचक्ष्व दक्षोऽसि गोले यदि ॥ २९ ॥

हे मित्र ! यदि तुम्हारे गणितमें क्षिप्रता हो तो शीघ्र कहो, किस अक्षांशमें (पलभा विशिष्ट) स्थानमें सूर्य्य आर्द्रा मध्यगत (२ । १५ । २०) होकर ईशान कोणमें उदित होता है ॥ २९ ॥

एकद्वित्रिचतुःपञ्चषड्भिर्यत्रोदितो रविः । मासैरस्तमयं याति तत्राक्षांशान् पृथक् वद ॥ ३० ॥

कहो देखें, किस २ अक्षांशमें सूर्य्य १, २, ३, ४, ५ और ६ मास काल एकत्र उदित रहता है ? ॥ ३० ॥

द्युज्यकापमगुणार्कदोर्ज्यकासंयुतिं खखखबाणसंमिताम् । वीक्ष्य भास्करमवेहि मध्यमं मध्यमाहरणमस्ति चेच्छ्रुतम् ३१

यदि गणना जानते हो तो द्युज्या, अपमज्या दोर्ज्या योगफल ५००० होनेपर सूर्य्य स्पष्ट निर्णय करो देखें ॥ ३१ ॥

द्युज्यापक्रमभानुदोर्गुणयुतिस्तिथ्युद्धृताब्ध्याहता स्यादाद्यो युतिवर्गतो यमगुणात् सप्तामरा ३३७ सोनिताः । नागाद्र्यंगदिगंकका: ९१०६७८ पदमतस्तेनाद्य ऊनो भवेद्व्यासार्धेऽष्टगुणाब्धिपावकमिते क्रान्तिज्यकातो रविः ३२॥

द्युज्या, अपक्रमज्या और सूर्य्यस्पष्ट ज्याका योगफल ४ से गुणन करने पर १५ से भाग करनेसे आद्य होगा योगफल वर्गको दोसे गुणन करनेपर

२३७ से भाग देनेपर ९१०६७८से वियोग कर मूल निर्णय करे। आद्यमें मूल वियोग करके धनु करनेपर क्रान्तिज्या होगी। उससे सूर्य्य निर्णय करे॥३२॥

क्रान्तिज्यासमशंकुतद्धृतिमहीजीवाग्रकाणां युतिर्दृष्टा खाम्बरपञ्चखेचरमिता पञ्चांगुलाक्षप्रभे। देशे तत्र पृथक् पृथग्गणकता गोलेऽसि दक्षोऽक्षजक्षेत्रक्षोदविधौ विचक्षण समाचक्ष्वाविलक्षोऽसि चेत्॥ ३३ ॥

क्रान्तिज्या और अग्राका योगफल ९५०० और अक्षप्रभा ५ अंगुली। इस समय हे गणक ! गोल त्रिकोण निर्णयमें यदि क्षमता हो और संयोगकी क्षमता हो तो इन सबके पृथक् परिमाण क्या हैं कहो॥ ३३ ॥

क्रान्तिज्यां विषुवत्प्रभारविहते तुल्यां प्रकल्प्यापराः कृत्वाग्र्यासमशंकुतद्धृतिमहीजीवा अभीष्टास्ततः। द्वयाद्यास्तद्युतिभाजिताः पृथगथ प्रोद्दिष्टयुत्या हता उद्दिष्टा खलु यद्युतिः पृथगिमा व्यक्ता भवन्ति क्रमात्॥२४॥

१२ से गुणित विषुवच्छायामें क्रान्तिज्या कल्पना कर अन्त्या, समशंकु, तद्धृति, महीज्या, इत्यादि गणनाकर योग करनेपर अभीष्ट होगा। छायागत तुज्यादि पृथक् २ इष्टद्वारा गुणन कर अभीष्ट द्वारा भाग करनेपर पृथक् २ व्यक्त होगा॥ ३४ ॥

अग्रापमज्याक्षितिशिञ्जिनीनां योगं सहस्रद्वितयं विदित्वा। पृथक् पृथक् ता गणक प्रचक्ष्व रूढा सगोले गणिते मतिश्चेत्॥ ३५ ॥

हे गणक ! यदि गोल गणितमें व्युत्पत्ति हो तो अग्रा अपमज्या, और क्षितिज्या योगफल २००० जानकर उनका पृथक् परिमाण निर्णय करो॥ ३५ ॥

आस्तां तावत् स गोलः सुगणक गणितस्कन्धबन्धप्रसिद्धः सिद्धान्तो लग्नसिद्ध्यै किमिति तव कुतस्तत्र तात्कालिकोऽर्कः। नाडीषष्ट्या द्युरात्रं दशपलयुतया भानवीयं किलाक्ष्या लग्नं तात्कालिकार्कात् प्रवद किमधिकं तद्द्युरात्रे पलोने॥ ३६ ॥

सुगणकका उपयुक्त गोल प्रश्न रहे, लग्न निर्णय करनेमें तात्कालिक सूर्य्यसे गणना क्यों कियाजाती ? ६० दण्ड १० पल और दिनवशतः लग्न उसके द्वारा

मार्तण्डे सममण्डलं प्रविशतिच्छाया किलाष्टचंगुलाष्ट-
ष्टाष्टासु घटीषु कुत्रचिदपि स्थाने कदाचिद्दिने । अर्क-
क्रान्तिगुणं तदा वदसि चेदक्षप्रभां तत्र च त्रिप्रश्नप्रचुर-
प्रपञ्चचतुरं मन्ये त्वदन्यं नहि ॥ ४१ ॥

किसी स्थानमें किस दिनमें सूर्य्य सम मण्डलमें ८ घटिका पर प्रवेश करनेके समय ८ अंगुली छाया दीखती है। सूर्य्य क्रान्तिज्या और पलभा कहसकने पर त्रिप्रश्न विद्यामें मैं तुम्हे अद्वितीय चतुर जानूं ॥ ४१ ॥

यत्र क्षितिज्या शरसिद्ध २४५ तुल्या स्यात्तद्धृतिस्तत्त्व-
कुरामसंख्या ३१२५ । तत्राक्षभार्कौ गणक प्रचक्ष्व चेद-
क्षजक्षेत्रविचक्षणोऽसि ॥ ४२ ॥

अक्षज त्रिकोणवित् होनेपर अक्षभा और सूर्य्य स्पष्ट, कुज्या, २४५ और तद्धृति ३१२५ कह सकते हो ॥ ४२ ॥

क्रान्तिज्यासमशंकुतद्धृतियुतिं कुज्योनितां वीक्ष्य यो
विंशत्यश्वरसै ६७२० मितामथ परां षष्ट्यंकचन्द्रै १९६०
मिताम्। कुज्याग्रापमशिञ्जिनीयुतिमिनं वेत्त्यक्षभां चापि
तं ज्योतिर्वित्कमलावबोधनविधौ वन्दे परं भास्करम्॥४३॥

क्रांतिज्या, समशंकु और तद्धृतिका योगफलसे कुज्या वियोग करनेपर ६७२० और कुज्या अग्रज्या और अपमज्याका योगफल १९६० प्रदत्त हुआ है। जो इससे अक्षभा और सूर्य्यस्पष्ट गणना करसकते हैं उनको ज्योतिर्विद् रूप पद्म उन्मीलनकारी सूर्य्य स्वरूप कहकर जानूंगा ॥ ४३ ॥

क्रान्तिज्यासमशंकुतद्धृतियुतिं कुज्योनितां वीक्ष्य यः
पूर्णाब्ध्यब्धिमहीमिता १४४० मथ परां खाभ्राष्टभू १८००
संमिताम् । अग्राज्यापमशंकुतद्धृतियुतिं वेत्त्यक्षभार्कौ
च तज्ज्योतिर्वित्कमलावबोधनविधौ वन्दे परं भास्करम् ४४

क्रान्तिज्या, समशंकु और तद्धृतिके योगफलसे कुज्या वियोग करनेपर १४४०, अग्रज्या, समशंकु और तद्धृतिका योगफल १८०० प्रदत्त हुआ है। इससे पलभा और सूर्य्य स्पष्ट निर्णय करो ॥ ४४ ॥

यत्र त्रिवर्गेण ९ मिता पलभा तत्र त्रिनाडीप्रमितं चरं स्यात् । यदा तदार्कं यदि वेत्सि विद्वन् सांवत्सराणां प्रवरोऽसि नूनम् ॥ ४५ ॥

जिस स्थानमें ९ पलभा और चर तीन दण्ड हों, उस समय सूर्य्यस्फुट कितना होगा ? यदि कह सको तो ज्योतिर्गणोंमें मैं तुम्हें श्रेष्ठ समझूं ॥ ४५ ॥

याम्योदक्समकोणभाः किल कृताः पूर्वैः पृथक्साधनैर्या-स्तद्दिग्विवरान्तरेषु च गता याः प्रच्छकेच्छावशात् । ता एकानयनेन चानयति यो मन्ये तमन्यं भुवि ज्योतिर्विद्वदनारविन्दमुकुलप्रोल्लासने भास्करम् ॥ ४६ ॥

याम्योदक् और समकोण प्रभा और मध्यस्थितभा पहिले पृथक् साधन द्वारा निर्णीत हुआ है । इस समय एक प्रकारकी गणनामें जो प्रश्न करनेकी इच्छानुसार निर्णीत करसके उनको पृथिवीमें ज्योतिर्विद्रूप कमलपुष्पके उल्लास सूर्य्यस्वरूप समझूं ॥ ४६ ॥

इष्टेष्टभां योऽत्र दिगर्कवेदी छायाद्वयं वा प्रविलोक्य दिग्ज्ञः । वेत्त्यक्षभामुद्धतदैववेदिदुर्दर्पसर्पप्रशमे स तार्क्ष्यः ॥ ४७ ॥

छाया देखकर दिशा और सूर्यस्थान जानकर दिशा जानकर और छाया-द्वय देखकर अक्षभा निर्णय कर सके उनको सर्पकुल स्वरूप ज्योतिर्विद्गणमें गरुडरूप मानूं ॥ ४७ ॥

भाद्वयस्य भुजयोः समांशयोर्व्यस्तकर्णहतयोर्यदन्तरम् । ऐक्यमन्यककुभोः फलप्रभा जायते श्रुतिवियोगभाजितम् ॥ ४८ ॥

भाद्वयका भुजद्वयके द्वारा गुणन कर (एकका भुज दूसरेके कर्णमें गुणन कर) एकदिशामें होनेपर अन्तर करनेसे किम्वा दिगन्तर होनेपर योग करनेसे जो हो उसको कर्णान्तर द्वारा भाग करनेपर पलभा होगी ॥ ४८ ॥

अक्षाभां तरणिं दिशो युगगतं मासं तिथिं वासरं
यः कूपोद्धतवन्न वेत्ति सहसा पृष्टो दिगर्कादिकम् ।
ब्रूहीत्याशु परैः कथं स कथयत्यस्योत्तरं वक्ति यो
वन्दे तच्चरणावमुष्य गणकाः के वा न सेवापराः ॥४९॥

कूपसे सहसा निकले हुए व्यक्तिकी नाई पलभा सूर्य्यदिक्, युग, मास, तिथि और वारज्ञान शून्य लोकको दिक् सूर्य्य प्रभृतिका प्रश्न जिज्ञासा करनेपर यदि ठीक उत्तर पा जावे तो उसके चरणकी वन्दना करूं। कौन नहीं उसका मान्य करेगा ॥ ४९ ॥

वंशस्य मूलं प्रविलोक्य चाग्रं तत्स्वान्तरं तस्य समुच्छ्रयं च। यो वेत्ति यष्ट्यैव करस्थयासौ धीयन्त्रवेदी वद किं न वेत्ति ॥ ५० ॥

जो लोग बांसकी जड़ और अग्रभाग देखकर हस्तस्थित यष्टिद्वारा उसका अन्तर और उच्चता निर्णय करेंगे वे धीयन्त्रविद् हैं वे क्या नहीं जानते ? ॥ ५० ॥

ऊर्ध्वस्थस्य गृहादिभिर्व्यवहितस्याप्यग्रमात्रं सखे वंशस्य प्रगुणस्य यस्य सुगमे देशे समालोक्यते। तत्रैव त्वमवस्थितो यदि वदस्यस्यान्तरं चोच्छ्रयं मन्ये यन्त्रविदां वरिष्ठपदवीं यातोऽसि धीयन्त्रवित् ॥ ५१ ॥

गृहादिद्वारा व्यवहित होकर समदेशस्थित किसी वंशका अग्रभागमात्र दीखता है, इस अवस्थामें एकस्थानमें रहकर अपनी उच्चतासे यदि उसकी ऊंचाई निर्णय करसको तो तुमको यन्त्रविद्गणमें श्रेष्ठ समझूंगा, कारण यह है कि ऐसा होनेपर तुम धीयन्त्रवित् होगे। इस प्रकार जलमें प्रतिफलित दृष्टमें उच्चता निर्णीत होती है, किन्तु इससे चक्षुकी उच्चता अन्तर करना चाहिये अथवा इस स्थलमें यष्टिका प्रयोजन नहीं। कारण यह है कि द्रष्टाकी दोनों उच्चता कोटी और जलस्थित (अग्रभागका) अन्तर बाहु ॥ ५१ ॥

दूरस्थस्य न दूरगस्य यदि वादृष्टस्य दृष्टस्य वा वंशस्य प्रतिबिम्बितस्य सलिले दृष्ट्वाग्रमात्रं सखे। अत्रैव त्वमवस्थितो यदि वदस्यस्यान्तरं चोच्छ्रयं त्वां सर्वज्ञमतीन्द्रियज्ञमनुजव्याजेन मन्ये भुवि ॥ ५२ ॥

दूरस्थित किम्वा निकटस्थित दृष्ट वा अदृष्ट वंशके आगेको प्रतिबिम्ब जलमें देखकर एकस्थानमें अवस्थित रहकर, यदि अन्तर और उच्चता कह सकते हो, तो तुमको मैं मनुष्यरूप सर्वज्ञ और अतीन्द्रिय समझूं ॥ ५२ ॥

तिग्मांशुचन्द्रौ किल सायनांशौ चतुर्द्विराशी च विपातचन्द्रः ॥ गृहाष्टकं तत्र वदाशु पातं धीवृद्धिदं त्वं यदि बोबुधीषि ॥ ५३ ॥

सायन सूर्य्य और चन्द्रमा २ राशि, और ४ राशि पातवियुक्त चन्द्रमा ८ राशि, यदि धीवृद्धिद पढ़ा हो तो; कहो उन सबका क्रान्तिपात एक है या नहीं ? ॥ ५३ ॥

युक्तायनांशोऽशशतं शशी चेदशीतिरर्को द्विशती विपातः । चन्द्रस्तदानीं वद पातमाशु धीवृद्धिदं त्वं यदि बोबुधीषि ॥ ५४ ॥

सायन चन्द्रमा १०० अंश, सायन सूर्य्य ८०, पातहीन चन्द्रमा २०० अंश, यदि धीवृद्धिद ज्ञान हो तो शीघ्र कहो क्रान्ति समान है या नहीं? ५४

असम्भवः सम्भवलक्षणेऽपि स्यात्सम्भवोऽसम्भवलक्षणे किम् । पातस्य सिद्धान्तमिह प्रचक्ष्व चेत्क्रान्तिसाम्ये प्रसृता मतिस्ते ॥ ५५ ॥

यदि तुम्हारी पातविषय प्रशस्त बुद्धि है तो क्यों (लल्लके मतसे) सम्भव होनेपर भी वास्तव सिद्धान्तमें असंभव होगा ? एवं असंभव स्थानमें सम्भव होगा ? ॥ ५५ ॥

भागोनयुक्तं त्रिभ २९।३१ मर्कचन्द्रौ चेत्सायनांशौ च विपातचन्द्रः । भागद्वयोनो भगण ११ २८ स्तदानीं पातं वद त्वं यदि बोबुधीषि ॥ ५६ ॥

सायन सूर्य्य त्रिराशिका एक अंश न्यून (२ । २९) हो, उसी समय अर्थात् समक्रांति है या नहीं ? सो कहो ॥ ५६ ॥

यातेऽपि पाते क्वचिदेष्यलक्ष्म गम्ये न गम्यं वद चित्रमत्र । यत् सम्भवासम्भववैपरीत्यं संवत्सराचार्य्य विचार्य्य नूनम् ॥ २७ ॥

पातगत होनेपर कहीं भावी गम्य होनेसे कहीं गत इसप्रकार धीवृद्धिदतन्त्रमें लिखा है । इसप्रकार संभवासंभवका वैपरीत्य ज्योतिषी महाशय विचारें ॥ ५७ ॥

रसगुणपूर्णमही १०३६ समशकनृपसमयेऽभवन्ममोत्पत्तिः । रसगुण ३६ वर्षेण मया सिद्धान्तशिरोमणी रचितः ॥५८॥

शाके १०३६ में मेरा जन्म हुआ और मेरी उमर ३६ वर्षकी थी तब मैंने सिद्धान्तशिरोमणि नामक ग्रन्थ रचा ॥ ५८ ॥

गणितस्कन्धसन्दर्भोऽदभ्रदर्भाग्रधीमतः । उचितोऽनुचितो यन्मे धाष्टर्यं तत्क्षम्यतां विदः ॥ ५९ ॥

गणितविद्यामें कुशाग्रतुल्य बुद्धितन्त्र प्रणयनमें चतुर पण्डितगण मेरी धृष्टताको क्षमा करेंगे ॥ ५९ ॥

ये वृद्धा लघवोऽपि येऽत्र गणका बद्धाञ्जलिं वच्मि तान् क्षन्तव्यं मम तैर्मया यदधुना पूर्वोक्तयो दूषिताः । कर्त्तव्ये स्फुटवासनाप्रकथने पूर्वोक्तिविश्वासिनां तत्तद्दूषणमन्तरेण नितरां नास्ति प्रतीतिर्यतः ॥ ६० ॥

इस समय हाथ जोड़ वृद्ध और अल्प वयस्क ज्योतिषी लोगोंके निकट क्षमा प्रार्थना करता हूं । कारण यह है, मैंने जो पूर्वोक्त ज्योतिषीगणोंकी पूर्णमीमांसामें दोष दिया है उसको अपने मनमें कर्त्तव्य समझता हूं । क्योंकि स्पष्ट दोष न देनेसे पूर्वोक्त विश्वासकारी आधुनिक गणकगण भ्रमसे नहीं उठ सकते ॥ ६० ॥

आसीत् सह्यकुलाचलाश्रितपुरे त्रैविद्यविद्वज्जने नानासज्जनधाम्नि विज्जडविडे शाण्डिल्यगोत्रो द्विजः । श्रौतस्मार्त्तविचारसारचतुरो निःशेषविद्यानिधिः साधूनामवधिर्महेश्वरकृती दैवज्ञचूडामणिः ॥ ६१ ॥

सह्यपर्वतके निकट वेदाध्यायी, विद्वान् और नानाप्रकार सज्जन पण्डित और मूर्ख निवास किसीएक नगरीमें शाण्डिल्यगोत्रीय ब्राह्मणकुलमें श्रुति और स्मृतिशास्त्र विचारकुशल नानाप्रकार विद्यामें सुपण्डित, साधुश्रेष्ठ दैवज्ञ चूडामणि महेश्वर नामक एक जन विद्वान वास करते थे ॥ ६१ ॥

तज्जस्तच्चरणारविन्दयुगलप्राप्तप्रसादः सुधीर्मुग्धोद्बोधकरं विदग्धगणकप्रीतिप्रदं प्रस्फुटम् । एतद्व्यक्तसदुक्तियुक्तिबहुलं हेलावगम्यं विदां सिद्धान्तग्रथनं कुबुद्धिमथनं चक्रे कविर्भास्करः ॥ ६२ ॥

उनका पुत्र उनके चरणके प्रसाद प्राप्तकर पण्डित और कवि भास्करने मूढलोगोंके बोधके लिये सुकुशल गणकके प्रीतिप्रद स्पष्ट नानाप्रकार सत् और विषद् युक्ति पूर्ण अल्पायाससाध्य विद्वानोंके सिद्धान्तसम्मत ग्रन्थ-रचना की है ॥ ६२ ॥

केचित् पिपठिषन्त्येनं प्रश्नाध्यायं हि केवलम् ।
तदर्थं लिखिता अत्र प्रश्नाः प्रागगदिता अपि ॥ ६३ ॥

कोई २ केवल मात्र प्रश्नाध्याय पाठ, करते हैं प्राक् कथित प्रश्न कतिपय इस स्थानमें पुनरुक्त हुए ॥ ६३ ॥

प्रश्नानमून् प्रपठतो गणकस्य गोलकन्दोल्लसत्सरलयुक्ति-शतप्रवालैः । प्रश्नोत्तरार्थपरिचिन्तनवारिसिक्तमूलामला मतिलता समुपैति वृद्धिम् ॥ ६४ ॥

इति श्रीमहेश्वरोपाध्यायसुतभास्कराचार्य्यविरचितो
गोलाध्यायः समाप्तः ।

इन प्रश्नोंको अच्छीप्रकार पढलेनेसे गणकगणकी निर्मल बुद्धिरूपी लता गोलविद्यारूपी मूलमें सैकड़ों सरल २ युक्तिरूपी नये २ पल्लवोंसे प्रश्नोत्तरार्थ परिचिन्तनरूप जलसे सिंचाती हुई वृद्धिको प्राप्त होगी ॥ ६४ ॥

इति गोलाध्यायः।

अथ ज्योत्पत्तिः ।

आचार्य्याणां पदवीं ज्योत्पत्त्या ज्ञातया यतो याति ।
विविधां विदग्धगणकप्रीत्यै तां भास्करो वक्ति ॥ १ ॥

ज्योत्पत्तिज्ञानद्वारा आचार्य्य पदवीका लाभ किया जाता है, इसलिये विद्वान् गणक लोगोंकी प्रीति सम्पादनार्थ भास्कराचार्य्य इस समय उसको कहते हैं ॥ १ ॥

इष्टांगुलव्यासदलेन वृत्तं कार्य्यं दिगंकं भलवांकितं च । ज्यासंख्ययाप्ता नवतेर्लवा ये तदाद्यजीवा धनुरेतदेव ॥२॥ द्वित्र्यादिनिघ्नं तदनन्तराणां चापे तु दत्त्वोभयतो दिगंकात् । ज्ञेयं तदग्रद्वयबद्धरज्जोरर्धं ज्यकार्धं निखिलानि चैवम् ॥ ३ ॥

इष्टांगुल व्यासार्द्ध परिमाणसे वृत्त रचनाकर चारों दिशा निर्णय करे। वृत्तमें ३६० अंश आङ्कित करे, ज्या संख्याद्वारा ९० भाग करनेपर परवर्त्ती धनु होगा, दिशाके अङ्कसे दोनों ओर धनु परिमाणसे अग्रद्वयगत रज्जुकी आधाही ज्यार्द्ध अर्थात् ज्या होगी ॥ २ ॥ ३ ॥

अथान्यथा वा गणितेन वच्मि ज्यार्धानि तान्येव परिस्फुटानि । त्रिज्याकृतिर्दोर्गुणवर्गहीना मूलं तदीयं खलु कोटिजीवा ॥ ४ ॥

अथवा ज्यार्द्ध सब स्पष्ट गणितद्वारा निर्णय करता हूं त्रिज्यावर्गसे भुजज्या वर्ग घटाकर मूल ग्रहण करनेपर कोटीज्या होगी ॥ ४ ॥

दोः कोटिजीवारहिते त्रिभज्ये तच्छेषके कोटिभुजोत्क्रमज्ये । ज्याचापमध्ये खलु योऽत्र बाणः सैवोत्क्रमज्या सुधियात्र वेद्या ॥ ५ ॥

त्रिज्यासे भुजज्या वियोग करनेपर कोटी उत्क्रमज्या और त्रिज्यासे कोटीज्या वियोग करनेपर भुजकी उत्क्रमज्या होगी । ज्या और धनुके मध्यमें जो शर है, उसीको पण्डितगणोंसे उत्क्रमज्या नामसे कहते हैं ॥ ५ ॥

त्रिज्यार्धं राशिज्या तत्कोटिज्या च षष्टिभागानाम् । त्रिज्यावर्गार्द्धपदं शरवेदांशज्यका भवति ॥ ६ ॥

त्रिज्यार्द्ध ३० अंशकी ज्या है, वह ६० अंशकी कोटी ज्या । त्रिज्यावर्गके अर्द्धका मूल ४५ अंशके कोटी और भुजज्या है ॥ ६ ॥

त्रिज्याकृतीषुघातात् त्रिज्याकृतिवर्गपञ्चघातस्य । मूलोनादष्टहृतान्मूलं षट्त्रिंशदंशज्या ॥ ७ ॥

त्रिज्यावर्गको त्रिज्यावर्गसे गुणनकर गुणनफलको ५ से गुणनकर मूल पञ्चगुणित त्रिज्या वर्गसे वियोग करके ८ से भाग करके मूल करनेपर ३६ अंशकी ज्या होगी ॥ ७ ॥

गलहयगजेषु ५८७८ निघ्नी त्रिभजीवा वायुतेन १०००० संभक्ता । षट्त्रिंशदंशजीवा तत्कोटिज्या कृतेषूणाम् ॥८॥

त्रिज्याको ५८७८ से गुणनकर १०००० भाग करनेपर ३६ अंशकी ज्या होगी इसकी कोटीज्या ५४ अंशकी ज्या है ॥ ८ ॥

**त्रिज्याकृतीषुघातान्मूलं त्रिज्योनितं चतुर्भक्तम् ।
अष्टादशभागानां जीवा स्पष्टा भवत्येवम् ॥ ९ ॥**

पञ्चगुणित त्रिज्या वर्गमूलसे त्रिज्या वियोग करके ४ से भाग करनेपर १८ अंशकी ज्या होगी ॥ ९ ॥

क्रमोत्क्रमज्याकृतियोगमूलाद्दलं तदर्धांशकशिञ्जिनी स्यात् । त्रिज्योत्क्रमज्यानिहतेर्दलस्य मूलं तदर्धांशकशिञ्जिनी वा ॥ १० ॥

क्रमज्या और उत्क्रमज्या वर्गयोगमूलका आधा वह धनुके आधेकी ज्या होगी । त्रिज्याको उत्क्रमज्यासे गुणनकर आधाकर मूल करनेपर उसका आधा धनु होगा ॥ १० ॥

तस्याः पुनस्तद्दलभागकानां कोटेश्च कोटचंशदलस्य चैवम् । अन्यज्यकासाधनमुक्तमेवं पूर्वैः प्रवक्ष्येऽथ विशिष्टमस्मात् ॥ ११ ॥

उसका और आधाकर क्रमशः आधेकी ज्या निर्णीत होगी । इस प्रकार कोटी दलकी ज्या निर्णय की जाती है । इसप्रकार पूर्वसे ज्या साधन कहा गया है इस समय विशेष नियम कहता हूं ॥ ११ ॥

त्रिज्याभुजज्याहतिहीनयुक्ते त्रिज्याकृती तद्दलयोः पदे स्तः । भुजोनयुक्तात्रिभखण्डयोर्ज्ये कोटिं भुजज्यां परिकल्प्य चैवम् ॥ १२ ॥

त्रिज्याको भुजज्याद्वारा गुणनकर त्रिज्यावर्गका योग या घटाकर आधाकर मूल करनेपर क्रमशः भुजयुक्त और वियुक्त ९० अंशके आधाकी ज्या होगी । उसी प्रकार भुजज्या स्थानमें कोटीज्याद्वारा कोटी निर्णय होगा ॥ १२ ॥

यद्दोर्जयोरन्तरमिष्टयोर्यत् कोटिज्ययोस्तत्कृतियोगमूलम् । दलीकृतं स्याद्भुजयोर्वियोगखण्डस्य जीवैवमनेकधा वा ॥ १३ ॥

दोनों भुजज्याके अन्तर्वर्ग भी दोनों कोटीज्याके अन्तर्वर्ग योगकर मूलार्द्ध दोनों भुजके अन्तरकी ज्या होगी । इसप्रकार ज्या निर्णय होगी ॥ १३ ॥

दोः कोटिजीवाविवरस्य वर्गो दलीकृतस्तस्य पदेन तुल्या। स्यात्कोटिबाह्वोर्विवरार्द्धजीवा वक्ष्येऽथ मूलग्रहणं विनापि ॥ १४ ॥

भुज और कोटीज्याके अन्तरके वर्गार्द्धका मूल करनेपर कोटी और बाहुके अन्तरार्द्धकी ज्या होगी। इस समय ज्या निर्देशका मूल ग्रहणको छोड़ कतिपय नियम कहूंगा ॥ १४ ॥

दोर्ज्याकृतिर्व्यासदलार्द्धभक्ता लब्धत्रिमौर्व्योर्विवरेण तुल्या। दोःकोटिभागान्तरशिञ्जिनी स्याज्ज्याद्यानि वा कानिचिदेवमत्र ॥ १५ ॥

भुजज्या वर्ग व्यासार्द्धद्वारा भागकर त्रिज्यान्तर करनेपर भुज और उसकी कोटी अन्तरकी ज्या होगी। इस प्रकार ज्या सब निर्णीत होती हैं ॥ १५ ॥

स्वगोऽङ्गेषुषडंशोने ६५६९ वर्जिता भुजाशिञ्जिनी।
कोटिज्या दशभिः क्षुण्णा त्रिसप्तेषु ५७३ विभाजिता ॥१६॥
तदैक्यमग्रजीवा स्यादन्तरं पूर्वशिञ्जिनी।
प्रथमज्या भवेदेवं षष्टिरन्यास्ततस्ततः ॥ १७ ॥

भुजज्यासे उसकी ६५६९ अंश घटानेपर एवं दशगुणित कोटीज्या ५७३ द्वारा भाग करे। इन दोनों अंकोंका योगफल परवर्त्ती ज्या होगी। प्रथमज्या ६० पर उक्त नियमकी गणना करे ॥ १६ ॥ १७ ॥

व्यासार्धेऽष्टगुणाब्ध्यग्नितुल्ये स्युर्नवतिर्ज्यकाः। कोटिजीवा शताभ्यस्ता गोदस्रातिथि १५२९ भाजिता ॥१८॥ दोर्ज्या स्वाद्यंगवदांश ४६७ हीना तद्योगसम्मिता। तदग्रज्या तयोश्चापि विवरं पूर्वशिञ्जिनी ॥ १९ ॥ तत्त्वदस्रा नगांशोना २२४। ५१ एवमत्राद्यशिञ्जिनी। ज्यापरम्परयैवं वा चतुर्विंशतिमौर्विकाः ॥२०॥

यहां व्यासार्द्ध ३४३८ इस प्रकार ९० अंशकी ज्या निर्णीत होगी। कोटीज्याको १०० से गुणन कर १५२९ से भाग करनेपर जो हो वह और भुजज्यासे ४६७ भाग वियोग करे। इन दोनोंका योग परवर्त्ती धनुका (अर्थात् ४५ अंशपर) ज्या होगी। दोनोंका प्रश्नसे पूर्वज्या जानी जावेगी।

इस स्थानमें आदिज्या २२४ $\frac{3}{6}$ है इस नियमसे २४ ज्या गणित होगी ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥

चापयोरिष्टयोर्दोर्ज्ये मिथः कोटिज्यकाहते ।
त्रिज्याभक्ते तयोरैक्यं स्याच्चापैक्यस्य दोर्ज्यका ॥ २१ ॥
चापान्तरस्य जीवा स्यात्तयोरन्तरसंमिता ।
अन्यज्यासाधने सम्यगियं ज्याभावनोदिता ॥ २२ ॥

दोनों इष्ट चापके भुजज्या और कोटीज्या और भुजज्यासे गुणनकर त्रिज्या-द्वारा भाग करके योग करनेपर दोनों धनुमें योगज्या और वियोग करनेपर अन्तरज्या होगी इसको ज्याभावन कहते हैं। अन्यज्या जाननेसे इसका व्यवहार किया जाता है ॥ २१ ॥ २२ ॥

समासभावना चैका तथान्यान्तरभावना ।
आद्यज्याचापभागानां प्रतिभागज्यकाविधिः ॥ २३ ॥

एकको समास भावना और अन्यको अन्तर भवना कहते हैं । प्रतिभाग ज्याको विधि द्वारा आद्य ज्या द्वारा धनु अंशादि निर्णय करे ॥ २३ ॥

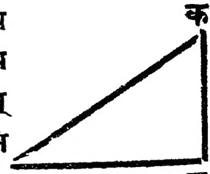
या ज्यानुपाततः सेष्टव्यासार्धे परिणाम्यते ।
आद्यदोःकोटिजीवाभ्यामेवं कार्य्या ततो मुहुः ॥ २४ ॥
भावना स्युस्तदग्रज्या इष्टे व्यासदले स्फुटाः ।
स्थूलं ज्यानयनं पाट्यामिह तन्नोदितं मया ॥ २५ ॥

इति ज्योत्पत्तिः ।

अन्यजातीय ज्या व्यासार्द्धमें परिणत करनेपर इष्ट ज्या होगी आदि भुज और कोटी ज्या इसप्रकार कर भावनाद्वारा अन्यान्यज्या निर्णय करनेपर व्यासार्द्ध स्पष्ट होगा । पाटी गणितमें ज्या आनयन स्थूल रूपसे कहा गया है, अतएव यहां पुनः नहीं कहा गया ॥ २४ ॥ २५ ॥

समाप्तोऽयं सिद्धान्तशिरोमणेर्गोलाध्यायः ।

भास्कराचार्य्यनें ज्योत्पात्ति निर्णय करनेके बदले भुजज्यांशसे कोटीज्या स्थिर किया है—क ख ग किसी त्रिकोणमें कोण क ख ग भुजसे होनेपर कोण



ख क ग कोटी क ग भुजज्या और ख ग कोटीज्या क ख त्रिज्या। ज्यामिति पाठकगण सबही जानते है जो क ग ख कोण सम कोटी होनेपर क ख २=क ग २+ख ग २अर्थात् त्रिज्यावर्ग भुजज्या वर्ग+कोटीज्या वर्ग उपरोक्त समीकरणसे भुजज्या कोटीज्या और त्रिज्याका सम्बन्ध स्थिर होगा।

हम लोग नीचेके व्यवहारमें कोणको एक २ अक्षर (क, ख,) द्वारा कोणकी भुजज्या और कोटीज्याको ज्य और कोज्या रूपसे कहेंगे।

क ख और ग सामान्यतः त्रिकोणका कोणत्रय है अतएव त्रिज्याको १ अर्थात् मानांक धरकर क+ख+ग=१८० अंश किन्तु ग=९० होनेपर क+ख=९०। ज्या क—कोज्या ख। ज्या (क+—०ख) ज्या क×कोज्या. ख+—कोज्या क×ज्याख। कोज्या (क+—ख) =कोज्या क×कोज्याख—×ज्याक×ज्याख उपरोक्त समीकरणमें क=ख होनेपर—

ज्या २ क=	२ ज्या क कोज्याक
कोज्या २ क=	१—२ ज्या २ क
ज्या ३ क=	३ ज्याक—४ ज्या ३ क
कोज्या ३ क=	३ कोज्या ३ क—३ कोज्याक

३० अंशकी ज्या निर्णय करनेसे। क=३० और ख=६० अर्थात् कोज्या ३०=ज्या२× ३०= २ ज्या ३०×कोज्या ३० अर्थात् ज्या ३०$\frac{१}{२}$ इसप्रकार १८ अंशमें ज्या के बदले क=२×१८ और ख=३×१८ ग्रहण करके ज्या२×१८=कोज्या ३×१८ २ज्या १८×कोज्या१८=४ कोज्या३ १८—३कोज्या ३०,४ज्या२ १८—३=२ज्या १८, ज्या १८=$\frac{१}{४}$ (मू५—१)। इस्से थोडे परिश्रमसे कोज्या=मू (१०+२मू५)×४ स्थिर होगा।

अतएव ३६ ज्या = $\frac{\text{मू (१० मू ५)}}{४}$ अर्थात् $\frac{\text{मू ५—मू ५}}{८}$

उक्त मज्याक= १—कोज्याक।

$\frac{१}{२}$ मू (ज्या २ क×उत्ज्या क)

=मू [ज्या २ क×[१—कोज्याक २] = $\frac{१}{२}$ मू [२—२ कोज्याक]

=मू $\left\{ \frac{\text{१ कोज्याक}}{२} \text{कोज्याक} \right\}$

=ज्या $\frac{क}{२}$ [उपरोक्त नियमानुसार]

उपरोक्त समीकरणमें कोज्याक= १—२ज्या $\frac{क}{२}$=२

२ कोज्या क–१ से ज्याक=मू१–कोज्या क=मू कोज्या क=मू १×कोज्याक / २ / २ / २ / २

मू ½ (ज्याक–ज्याख) २; और क+ख–९०–मू ½ (२ ज्या क–ख मू–) / २

२=ज्या क–ख कारण ज्या (ग+घ)–ज्या (ग–घ)=२ कोज्या ग×ज्या घ / २

इस स्थानमें ग+घ=क एवं ग–घ स्थानमें ख रखनेपर उपरोक्त समीकरणमें उपस्थित होना पड़ेगा ।

१५ (श्लोक) १–२ ज्याकवर्ग=कोज्या वर्गक ज्यावर्गक किन्तु क+ख –९० अर्थात् ज्याक – कोज्या ख वह होनेसे उपरोक्त अंक–कोज्याक ज्याख-ज्याक अर्थात् ज्या (ख–क) (७ श्लोक) प्रथम धनुकपरवर्त्तौ धनुक+अ । दोनों ज्याका पार्थक्य–ज्या (क+अ) ज्याक–ज्याक (कोज्या अ–१)+ कोज्याक×ज्याअ । ज्या अ=अ–अ ३ × अ ५ प्रभृति; कोज्या अ=अ२ अ ४ / १ २ ३ / १ २ ३ ४ ५ / १ २ १ २ ३ ४

इत्यादि ।

अ अति स्वल्प होनेसे उसका धन और ऊर्ध्वतम शक्ति अत्यल्प होगी अत एव इस स्थानमें दो या तीन अङ्क लेनेसे यथेष्ट होगा । एक अंश व्यासार्द्धका १७४५३३ भाग वही अ होनेसे—ज्या अ–०१७४५२४, को ज्या अ-९९९८४७७ पार्थक्य ज्या क (१–१०००१५२३)+कोज्याक×१०१७४५-२४ सिद्धान्तोक्त १–'०००१५२२३ .ं १० = '०१७४५२, अतएव दोनोंक / ६५२२ / ५७४

पार्थक्य बहुत थोडा है । उक्त क्रियानुसार अ = ३अंश ४५ कला रखनेसे पार्थक्य–ज्या क (१–००२१४११) + कोज्या क × ०६५४०३१ सिद्धान्तोक्त १ =.०२१४१३ और १०० – ०६५४०२, अंशादि ३।४५ कोज्या- / ४३७ / ६५२९

२२४८४ कला ।

7 उपरोक्त प्रक्रियामें जिस अंकका वर्गमूल ग्रहण करनापडे उस स्थानमें उस अंकके पहिले " " ऐसा अक्षर व्यवहृत हुआ है ।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना–

खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेंकटेश्वर" स्टीम्-प्रेस,
बम्बई.

गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास,
"लक्ष्मीवेंकटेश्वर" स्टीम्-प्रेस,
कल्याण–बम्बई.